श्रीअरविन्द कर्मधारा

सितम्बर-अक्टूबर, २०२१ श्रीअरविन्द -150वीं जयंती-वर्ष - द्वितीय विशेषांक वर्ष ५२ • अंक ५

श्रीअरविन्द कर्मधारा

श्रीअरविन्द आश्रम दिल्ली शाखा की पत्रिका

सितम्बर-अक्टूबर -२०२१

संस्थापक

श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फकीर'

सम्पादन : डॉ. अपर्णा रॉय

विशेष परामर्श समिति

कु. तारा जौहर, विजया भारती,

ऑनलाइन पब्लिकेशन ऑफ

श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली शाखा

(निःशुल्क उपलब्ध)

कृपया सब्सक्राइब करें-

saakarmdhara@rediffmail.com

कार्यालय

श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली-शाखा

श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

दूरभाषः 26567863, 26524810

आश्रम वेबसाइट

(www.sriaurobindoashram.net)

मेरा देश मेरी माँ

जबकि दूसरे लोग देश को जड़-पदार्थ समझते हैं और इसे मैदानों, खेतों, जगंलों, पर्वतों और नदियों का समूह मात्र मानते हैं; मैं स्पष्ट अनुभव करता हूँ कि मेरा देश मेरी माँ है। मैं जननी के रुप में इसकी आराधना, इसकी भक्ति करता हूँ।

जब माँ के वक्षस्थल पर बैठा दानव माँ का रक्त पीना चाहता हो तो बेटे को क्या करना चाहिए? क्या वह आराम से खाना खायेगा और अपने बच्चों और पत्नी के साथ रंगरेलियाँ मनायेगा या अपनी माँ की रक्षा के लिए दौड़ेगा? मैं जानता हूँ कि इस अधोगत राष्ट्र को उठाने का सामर्थ्य मुझ में है; शारीरिक सामर्थ्य नहीं, मैं कृपाण या बन्दूक की ताकत से संघर्ष नहीं करना चाहता, बल्कि ज्ञान की शक्ति से........। यह मेरे अन्तर की कोई नयी अनुभूति नहीं है, यह विचार कोई अभी नहीं पैदा हुआ, बल्कि मैं इस विचार के साथ ही जन्मा, यह मेरी मज्जा में है। परमेश्वर ने इसी मिशन को पूरा करने के लिए मुझे पृथ्वी पर भेजा है।

-श्रीअरविन्द

विषय सूची

यह पुस्तक:

१. संपादकीय

अपर्णा ४

२. आगामी क्रान्ति : आध्यात्मिक

डॉ.के.आर.श्रीनिवास आयंगर ५

३. महत् मानवों की सृष्टि:एक अनिर्वाय स्थिति!

-डॉ.शिवप्रसाद सिंह १०

४. श्रीअरविन्द

-सुरेन्द्रनाथ जौहर १४

५. १५ अगस्त १९७२ की बातें

-आर. आर. दिवाकर १९

६. भारत की ओर यूरोपीय अभिमुखता

-रामकुमार 'कृषक' २१

७. परम्परा में महायोगी श्रीअरविन्द

-जे. पी. तिवारी २५

८. कालिदास और श्रीअरविन्द

-डॉ. सुरेशचन्द्र त्यागी २९

९. मनुष्य : दास या मुक्त?

-श्रीअरविन्द ३२

१० पत्र, एक अमरीकी सम्पादक के नाम

-उदार पिण्टो ३५

११ भारतीय राष्ट्रवाद का प्रखर पुरोधा

-जवाहर लाल नेहरू ३८

१३. आश्रम गतिविधिया ३९

संपादकीय

प्रिय पाठकगण !,

जैसा कि आप सबको पूर्व विदित है कि हम श्री अरविन्द के 150वें जयंती वर्ष का आनंदोत्सव मना रहे हैं, और इस उपलक्ष्य में श्री अरविन्द आश्रम की द्विमासिक पत्रिका श्री अरविंद कर्मधारा का प्रत्येक अंक श्री अरविंद को समर्पित है।

इस संदर्भ में स्मरणीय है कि हमने अगस्त मास में आपके सम्मुख सन् 1972 अगस्त मास में प्रकाशित श्रीअरविंद को समर्पित अंक का पूर्वार्ध प्रस्तुत किया था, इस बार हम उसीका उत्तरार्ध लेकर प्रस्तुत हैं। 1972 के अंक के पुन:प्रकाशन के मूल में हमारा भाव यही है कि श्रीमाँ की प्रेरणा से प्रकाशित और श्री अरविंद को समर्पित इस अंक को श्रीमाँ ने न केवल भौतिक रूप से देखा और स्पर्श किया, बल्कि अपना आशीर्वाद भी दिया था।

श्रीमाँ द्वारा प्रशस्त इस प्रेरणा पथ पर हम चलते रहे और उनके प्रति समर्पित भाव से उनके कार्य मैं संलग्न रहने के दृढ़ संकल्प के साथ उनके प्रकाश की किरण को न केवल स्वयं ग्रहण करें बल्कि दूर दूर तक दुनिया के हरे कोने तक उस प्रकाश को फैलाने में प्रयासरत रहें, इसी शुभेच्छा के साथ प्रस्तुत है श्री अरविन्द को समर्पित पत्रिका का यह अंक

सस्नेह,
अपर्णा

कोई बात नहीं यदि सैकड़ों प्राणी घोरतम अज्ञान में डूबे हुए हैं। जिनका मैंने कल दर्शन किया है, वे इसी पृथ्वी पर हैं। उनकी विद्यमानता इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि वह दिन अवश्य आयेगा जब अन्धकार प्रकाश में बदल जायेगा, जब भगवान का राज्य पृथिवी पर सचमुच स्थापित हो जायेगा।

-श्रीमाँ

आगामी क्रान्ति : आध्यात्मिक

-डॉ.के.आर.श्रीनिवास आयंगर

मानव जाति पूछे बिना नहीं रहेगी:

"यह परिवर्तन, और परिवर्तन, और फिर परिवर्तन-वैज्ञानिक और प्राविधिक परिवर्तन, राजनीतिक और समाजिक परिवर्तन-किन्तु कहाँ हैं सुख-सुविधाओं की वे भूमियाँ जिनके लिए भरोसे बँधाये गये?" ये परिवर्तन कोई भी अन्तिम या निर्णायक नहीं जान पड़ते; क्योंकि वह सबसे भीतर का परकोटा, मनुष्य का अन्तरात्मा, ज्यों का त्यों मोर्चा बाँधे खड़ा है। पचास से अधिक वर्ष हुए श्रीअरविन्द ने कहा था- "ये जो भी परिवर्तन मानव जगत् में हुए दिखाई पड़ते हैं, सब अपने अभीष्ट या प्रयोजन की दृष्टि से या तो बौद्धिक हैं या नैतिक या फिर भौतिक; आध्यात्मिक क्रांति तो अभी समय हो आने की प्रतीक्षा में ही हैं।"

बाह्यजगत के बारे में हमारा दृष्टि-भाव तेजी से बदला गया है। ज्यों-ज्यों और जिस गति से वैज्ञानिक और प्रावैधिक (तकनीक), राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन हुए उसी गति से और उनके ही परिणामस्वरूप यह बदला है। इस दिशा में जैसे क्रिया और प्रतिक्रिया की एक अटूट श्रृंखला चला करती है। किसी एक क्षेत्र में कोई परिवर्तन आया कि उसका संवेग दूसरे में पहुँचता है और वहाँ से तीसरे में। यह अवश्य है कि संवेग की तीव्रता पहले जितनी नहीं रहती। यह भी होना सम्भव है कि वैज्ञानिक या प्रावैधिक परिवर्तन से राजनीतिक परिवर्तन पिछड़ा रहे, और सामाजिक परिवर्तन कोई आये भी तो बिलकुल कछुवे की गति से।

वैज्ञानिक ज्ञान-विकास के क्षेत्र में तो जैसा 'प्रस्फोटन' इधर हुआ है उसका अनुमान इसी से किया जा सकता है कि अब मात्र दस वर्ष का काल 'द्विगुणन का (दुगुना) काल' बन गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रथम महायुद्ध के बाद के इन पचास वर्षों में हमारा उपलब्ध वैज्ञानिक ज्ञान बत्तीस गुना बढ़ा है! इतनी तेज गति प्रावैधिक विकास के बाराबर ही नहीं रही। हाँ पछले दो-एक दशकों में, विशेषकर अमेरिका और रुस जैसे देशों में, प्रावैधिक विकास भी न केवल वैज्ञानिक विकास की पद्धति से ही नहीं हुआ बल्कि कभी-कभी तो उसने विज्ञान को कुछ विशेष उद्यम और प्रयत्नों तक के लिए भी बाध्य किया। विज्ञान कि किसी उपलब्धि को प्रविधिविज्ञ लोग अपने यहाँ मशीनी-प्रक्रिया में देर-सबेर ढालकार उसे अन्न के उत्पादन, उद्योग-धन्धों के विकास या देश की प्रतिरक्षा के उपयोग का बनायें, इसके स्थान पर प्रवृत्ति अब यह हो आयी है कि अपने ही प्रयोग करते किसी समस्या से सामना पड़ने पर उसके उपाय-निदान की खोज में प्रविधिविज्ञ स्वयं वैज्ञानिक के पास भी पहुँचता है।

पहले कहा जाता था कि युद्ध में सेना जिधर अधिक होगी उधर ही जय रहेगी। आज इससे कहीं अधिक सच्चाई के साथ यह कहा जा सकता है कि जय-विजय तो उन लोगों के हाथ है जो विज्ञान के क्षेत्र में बड़ी-बड़ी लागत के और जटिल यन्त्रों-उपकरणों को लिये प्रयोगशालाओं में काम करते जुटे हैं। और अकूत धन-सम्पत्ति वाले दो-एक देशों की शासन-

सत्ताओं को छोड़ यह तो सामर्थ्य ही किसकी हो सकती है कि वैसे यन्त्रों-उपकरणों की जुगाड़-व्यवस्था कर सके! सन् १९६८ में अमेरिकी विश्वविद्यालयों में वैज्ञानिक विकास-अनुसन्धान पर जो तीस अरब रुपया व्यय हुआ उसका दो-तिहाई वहाँ के प्रतिरक्षा विभाग, ए ई सी और नासा (नैशनल एऊरोनॉटिक्स एण्ड स्पेस ऐडमिनिस्ट्रेशन) से आया। आकँड़े कहीं कम होंगे कहीं अधिक, पर दशा और प्रवृत्ति सब कहीं लगभग यही है। और यदि यही दशा और गति चलती है तो बहुत सम्भव है कि अधिकांश वैज्ञानिक शोध-अनुसंधान को शासन-सत्ता, महाकाय उद्योग-व्यवसाय या किसी अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ निकाय का बँधुवा ही होकर रहना पड़े।

मनुष्य को चन्द्रमा पर सहज भाव से उतारने, मंगल और शुक्र का सब–कुछ अपनी आँखो देखने-बूझने और 'अन्तरिक्ष द्विपों' की बात को सच्चा और साकार करने के जो बड़े भारी-भारी और जटिल कार्यक्रम प्रविधिविज्ञों ने उठाये हुए हैं उन्हें लेकर उनके आगे नित नई समस्याओं की चुनौती खड़ी रहती हैं। स्वभावत: अपनी समस्याओं को प्रविधिविज्ञ पहले अपनी प्रयोगशाला के वैज्ञानिकों को सौंपता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि परम्परा से जो भेद 'शुद्ध' और 'प्रायोगिक' विज्ञान,

> आज वह सभी-कुछ हमें उपलब्ध है जो विज्ञान और प्रविधि दे सकते : जीवन की अगिन कलाएँ, युद्ध और मौत के भयावने उपकरण, चुम्बकीय टेप और रेडियो-आइसोटोप और प्रलयवाही प्रक्षेपास्त्र, प्रतिजैविकी और हृदय-प्रतिरोपण और नापम बम। फिर भी अपनी इस प्रचण्ड प्रावैधिक शक्ति-सामर्थ्य की इस मध्याह्न घड़ी में हमें काली रात की अंधेरी का पल-पल भय बना रहता है। जहाँ क्षमता-पौरुष और गरिमा-गौरव की अटूट हिलोरें उठनी थीं, वहाँ एक निरर्थकता की निरन्तर कचोट है या रोएँ-रोएँ में फैली हुई चुनचुनी कि जो पाया है वह सभी तो बेतुका है, असंगत! बढ़ता हुआ विज्ञान बढ़ती हुई प्रावैधिकि, बढ़ती हुई कगारों की राजनीति-कला, बढ़ती हुई आर्थिक उथल-पुथल, बढ़ती हुई सिक्कों और नोटों की जुगाड़-व्यवस्था, बढ़ते हुए सामाजिक तनाव, और अधिकाधिक बढ़ते हुई पराये-विरानेपन के भाव- आचरण किस ओर कहाँ लिये जा रहे हैं यह सब हमें?

अर्थात् विज्ञान और प्रविधि में चलता आया है वह अब धीरे-धीरे मानो बिना अन्तर का भेद बनता जा रहा है।

इससे और थोड़ा आगे जायें तो हम शायद यह भी कह सकते हैं कि अब तो प्रविधिविज्ञ की एकोएक समस्या ही मानो किसी विराट उद्योगपति या राजनीतिज्ञ की अथवा जल-थल या वायु सेना की किसी शीर्ष अधिकारी की दी हुई समस्या होती है। और सच यह है कि होता तो यहाँ तक है कि ये लोग स्वयं केवल उन विचारों या भावनाओं को रुप और स्वर देते होते हैं जिनकी देश की जनता में चर्चा चल आई है: भले ही वह अभी अस्पष्ट हो और कितनी भी अयुक्तिपूर्ण। उदाहरण के लिए, इस प्रकार के ही विचार-भाव जनता में उभर सकते हैं, जान-बूझकर उभारे जा सकते हैं, कि अपने यहाँ भी अब अणुअस्त्र होने चाहियें क्योंकि पड़ोसी देश के पास हैं, और देश की सरकार जनता की इस माँग को रोकने-थामने में असमर्थ रहे।

यह बात निर्विवाद है कि अमेरिका और सोवियत रुस के बीच शीत-युद्ध की स्थिति और उससे ऊपजी विवशतायें न होतीं तो इन दोनों महादेशों में अन्तरिक्ष संबन्धी अनुसंधान और प्रयोग यों प्रतिष्ठा और प्रतिरक्षा का प्रश्न बनकर न चलते होते। अमेरिका ने अणुबम बनाया तो सोवियत रूस के लिए भी आवश्यक हो गया, और फिर तो इंग्लैण्ड, फ्रांस , चीन सभी को

एक-एक करके उस दौड़ में आ जाना पड़ा। एक को देखकर दूसरे के भी वही राह ले उठने की रीति व्यक्तियों में जैसे चलती है वैसे ही पूरे-पूरे समाजों में और राष्ट्र में भी! इस प्रकार शासन-सत्ता का आदेश सेना के प्रधान अधिकारी के पास पहुँचता है, वहाँ से प्रविधिविज्ञ को मिलता है और यह उसे लिये हुए फिर वैज्ञानिक के सामने जा खड़ा होता है। दूसरे शब्दों में 'विज्ञान-प्रविधि- कृषि (उद्योग)-प्रतिरक्षा-समाज' की समूची लड़ी को अपने में लपेटे-समाये यह नित-नूतन का रहँट अब बड़ी तेजी से उलटी चाल में पड़ चला है। कभी झटका सिर का होता है और दुम हिलने लगती है, तो कभी-कभी अब झटका दुम लगाती है और सिर को हिलना पड़ता है। बहुतकर तो इन दोनों का भेद और बीच का अन्तर तक आँखो से धुँधला हुआ रहता है।

स्थिति यह है कि किसी देश के भीतर हो चाहे व्यापक रुप से समूचे सभ्य जगत में, पर लाखों-लाखों और करोड़ों के जन-समूह भी अब किसी गनती में नहीं लिये जाते। उनकी ओर कान दिया जाता है तो तभी जब कोई उन्माद उन पर सवार हो आया हो और अपनी बात मनवाने के लिए भावों और चेष्टाओं में वे भयानक होने लगे हों। ये उन्माद क्या 'परदे के पीछे' रहकर राजनीतिक बाँधनूँ बाँधने और, आगे बढ़ाने वालों के जगाये-फैलाये हुए होते हैं? किसी भी हाल इतना तो जग जाना है कि कोई राजनीतिक नेता यदि जनता के उबाल-उन्माद को वाहन बनाने चला और भले ही पहली पाली में कहीं कुछ सफलता के पास भी पहुँच सका, यह उसे जल्दी ही उजागर हुए बिना नहीं रहा कि उसने एक जीते-जागते बाघ को वाहन समझा है। उसे वह न कहीं रोक सकता है न उसकी चाल पर अंकुश ही रखने पाता है, और यह तो सोचने से भी बाहर की बात होती कि उस पर से उतर आये और कहीं अँधेरे दुराव में जा छिपे। उसके लिए तो अब ज्यों का त्यों बैठे तेज़-से-तेज़ होती गति से आगे ही बढ़ना रह जाता या फिर यह रहता कि किसी भी क्षण नीचे पटक दिया जाये और नोंच-फाड़कर चीथड़े-चीथड़े कर दिया जाये।

प्रावैधिक विकास और प्रगति बहुत-कुछ ऐसी ही बाघ की पीठ पर बैठे हुए की प्रगति होती है। चाहें भी तो उसकी गति को थामते न बने, उलटे यही देखना हो कि वह बराबर तेज़ हुआ और: इतनी तेज़ कि भीतर-बाहर का सभी-कुछ चकराता हुआ जान पड़े और अणुप्रलय लम्बे-लम्बे डग भरता घर की पौर की ओर बढ़ता आये। यों विज्ञान प्रविधि के अधीन, प्रविधि राजनीति के अधीन, राजनीति जनसमूहों के उन्माद के अधीन, जनसमूह इस विद्युदणु (इलेक्ट्रोन) युग के अचूक संचार-साधनों (समाचारपत्र, सिनेमा, रेडियो, टी.वी.) के सहारे कितने भी उन्मत्त किये ही जा सकें, और यह विद्युदणु युग स्वयं विज्ञान और प्रविधि की कृपा से कम्प्यूटरों की अधिकाधिक लीला बनता हुआ! कहाँ है इस अखण्ड दुश्चक्र की वह शिथिल कड़ी जहाँ से इसे भेदा जा सके? कैसे होगा भेदना? किसके द्वारा?

आज वह सभी-कुछ हमें उपलब्ध है जो विज्ञान और प्रविधि दे सकते : जीवन की अगिन कलाएँ, युद्ध और मौत के भयावने उपकरण, चुम्बकीय टेप और रेडियो-आइसोटोप और प्रलयवाही प्रक्षेपास्त्र, प्रतिजैविकी और हृदय-प्रतिरोपण और नापम बम। फिर भी अपनी इस प्रचण्ड प्रावैधिक शक्ति-सामर्थ्य की इस मध्याह्न घड़ी में हमें काली रात की अंधेरी का पल-पल भय बना रहता है। जहाँ क्षमता-पौरुष और गरिमा-गौरव की अटूट हिलोरें उठनी थीं, वहाँ एक निरर्थकता की निरन्तर कचोट है या रोएँ-रोएँ में फैली हुई चुनचुनी कि जो पाया है वह सभी तो बेतुका है, असंगत! बढ़ता हुआ विज्ञान बढ़ती हुई प्रावैधिकि, बढ़ती हुई कगारों की राजनीति-कला, बढ़ती हुई आर्थिक उथल-पुथल, बढ़ती हुई सिक्कों और नोटों की जुगाड़-व्यवस्था, बढ़ते हुए सामाजिक तनाव, और अधिकाधिक बढ़ते हुई पराये-विरानेपन के भाव- आचरण किस ओर कहाँ लिये जा रहे हैं यह सब हमें?

वे जिनके हाथ में सत्ता है-हमारा राजनीतिज्ञ, सेनाओं का संचालक, अर्थ-व्यवस्था और उद्योग का नैपोलियन, शासन का तंत्र सँभालने वाला अधिकारी, और एक विराट् वैज्ञानिक-प्राविधिक प्रयोगशाला का प्रमुख-वे सब स्वयं विश्वव्यापी शक्ति-आवेगों के बवण्डर में तिनकों से अवश फँसे हुए इधर से उधर चक्कर-थपेड़े खा रहे हैं। उन आवेगों पर न उनका जोर चलता है न उनकी समझ काम करती है। ऐसा बराबर उन्हें अवश्य लगा करता है कि जितनी शक्ति और सत्ता उनके हाथ में है अभी कम है, कि उनके कन्धों पर बड़े भारी-भारी उत्तरदायित्व हैं जिन्हें कैसे पूरा करें यह समझते नहीं बनता, और जब वे अपने सामने हठात् एक ऐसी दीवार खड़ी पाते हैं जिसे कोई नाम दे नहीं पाते और लाँघना असम्भव रहता है।

रूसी कम्युनिस्ट विचारक इल्या एहरेन्बर्ग ने बड़े दुखी स्वर में स्वीकार किया है कि "देश के राजनीतिक ढाँचे या अर्थ-व्यवस्था को बदलने से कहीं कठिन लोगों की मनोवृत्ति को बदलना होता है।" राज्य-क्रान्ति या कोई आकस्मिक शासन-परिवर्तन मात्र दो घण्टे का नहीं जो दिन निकले से साँझ आने तक का काम होता है, आर्थिक सुधार लाने में कुछ बरस लग सकते हैं, यहाँ तक कि सामाजिक व्यवहार का रूप-रंग भी समझाने-बुझाने से या नियम-कानून बनाकर बदला जा सकता है। मगर यह 'लोगों की मनोवृत्ति' बिल्कुल ही और बात होती है। इसकी ओर से बड़ा-बड़ा प्रतिरोधक उठा करता है। एक तरह से यह मनुष्य का स्वाभाविक कवच भी होती है। ऐसा न हो तो ये आज की शासन-सत्ताएँ न जाने कितने व्यापक पैमाने पर जनता के मस्तिष्क की मनचाही धुलाई-रंगाई कर दिया करतीं। और तभी यह भी सम्भव रहता है कि ऐसे बिरले व्यक्ति यहाँ-वहाँ मिल जायें जिन्हें कवि कह लें चाहे साधु-संत या योगी-महात्मा, पर जो सबसे अलग जैसे निष्क्रिय रहकर अपनी सम्वेदन-शक्तियों की एकान्त फुलवारी को निराया-सींचा करते हैं और जिनकी दृष्टि वस्तुओं के अन्तरतम तक पहुँचती अनदिख सत्यों को देख जाती है। बहुत सम्भव है भविष्य की कुंजी ऐसे ही किसी महापुरुष के पास हो।

तब क्या धर्म और आस्था का कोई स्थान है इस पागल हुए और पागल करते लोक-संसार में जहाँ परिवर्तनों का ताँता बँधा है, निष्ठाएँ बात की बात में हट-बदल जाती हैं, और मूल्यों का विघटन चरम को पहुँचता हो? क्या विस्मय और श्रद्धा, प्रेम-प्रीति और आशाओं-भरी धार्मिक चेतना-भावना का कहीं कोई समझौता हो सकता है आज के जीवन-जगत से जो जितना ही लुभावना है उतना ही चकित और भयभीत कर देने वाला, और जिसका रक्षण-पोषण विज्ञान और प्रावैधिकी पर निर्भर है और एकमात्र इनके द्वारा ही जो अपने-आपको उद्घाटित भी करता है? धार्मिक अन्तर्ज्ञान हमें मिलाते हैं, एक करते हैं; जबकि मताग्रह और कर्मकाण्ड, अन्धविश्वास और अर्थव्याख्या, और दर्शन-सिद्धान्त और तात्विक निरुपण-ये सब जितने भी हैं, अनिवार्य रुप से हमें एक-दूसरे से अलग करते, बाँटते हैं। इन सबसे मुक्त, इनका स्पर्श तक जिसे न हो, वही धर्म आध्यात्मिकता है। आध्यात्मिकता अर्थात उसी अपरिवर्ती एकतम की संप्रतीति जो इस चमत्कृत करते भौतिक जगत के सारे ज्वार-भाटों जैसे परिवर्तनों के पीछे बैठा रहता है!

मानव-जाति पूछे बिना नहीं रहेगी : "यह परिवर्तन, और परिवर्तन, और फिर परिवर्तन-वैज्ञानिक और प्राविधिक परिवर्तन, राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन-किन्तु कहाँ हैं सुख-सुविधाओं की वे भूमियाँ जिनके लिए भरोसे बँधाये गये?" ये परिवर्तन कोई भी अंतिम या निर्णायक नहीं जान पड़ते; क्योंकि वह सबसे भीतर का परकोटा, मनुष्य का अन्तरात्मा, ज्यों का त्यों मोरचा बांधे खड़ा है। पचास से अधिक वर्ष हुए श्रीअरविन्द ने कहा था - "ये जो भी परिवर्तन मानव जगत में हुए दिखायी पड़ते हैं, सब अपने अभीष्ट या प्रयोजन की दृष्टि से या तो बौद्धिक हैं या नैतिक या फिर भौतिक; आध्यात्मिक क्रान्ति तो अभी समय आने की प्रतीक्षा में ही है।" आज हमें ज्ञात है कि धरती चपटी नहीं गोल है; हम मानने लगे हैं कि हमारे बीते

युगों के कितने ही नियम-विधान न उचित थे न न्यायसंगत; और अपना कहीं भी जाना-आना करने के लिए हम मोटर-रेल या जेट विमान के अभ्यस्त हो गये हैं। प्रकार-प्रकार के विचार हमारे हृदय और मन की प्राचीरों को भी भेदते लगते हैं। किन्तु मनुष्य की अंतरात्मा तो जहाँ की तहाँ ही अक्षुण्ण बनी है।

कोई परिवर्तन जो मात्र परिवर्तन के लिए हो, जो केवल इसलिए हो कि अपनी वर्तमान स्थिति से हम ऊब आये हैं, जो किसी राजनीति या आर्थिक विचारधारा के आदेशों का तानाबाना हो, जो निरी तानाशाही सनक या किसी कट्टर मतांधता में ऊपर से आरोपा गया हो-ऐसा कोई भी परिवर्तन ऊपरी-ऊपरी से अधिक कभी नहीं होता। कभी आवश्यक नहीं होता कि तुम्हारी आस्थाएँ मेरी भी हों, कि जो आचार-नीति मेरी हो वही तुम्हारी भी रहे। जब तक हमारे कार्यों का प्रेरण-संचालन अंहकार के द्वारा होगा, मानवीय सम्बन्धों में सच्चे सामंजस्य की आशा दुराशा मात्र रहेगी। परिवार, कुल, जाति, राष्ट्र-ये सब भी हमारे अहं की ही वृहत्तर इकाइयाँ हैं। इनमें आत्मिक भूमि का भ्रम कर लेना भारी भूल होगी। 'आध्यात्मिक क्रान्ति' की कुछ लहरें यहाँ-वहाँ अवश्य ऊभरीं: सामने ही रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, रमण महर्षि के उदाहरण हैं। किन्तु इन लहरों ने सागर की तटभूमि को भले ही सार्थक भाव में छुआ और सींचा, सागर स्वयं अछूता रह गया। जब तक सागर ही अपने पूरे ज्वार-वेग में उमड़-उमड़ कर समूची धरती को उम-चूम नहीं कर देता, वह क्रान्तिकारी परिवर्तन न होगा, नहीं हो सकता।

श्रीअरविन्द ने कहा है : "इस क्रान्ति के घटित न होने तक दूसरों का संवेद होना कठिन है, और तब तक न कोई अर्थ वर्तमान घटनाओं की व्याख्या करने का होगा न मानव के भविष्य का पूर्वानुमान ही लगाने का। क्योंकि उस क्रान्ति का स्वभाव, शक्ति-बल, और घटना ही तो वह आधार प्रस्तुत करेंगे जिस पर मानव जाति के अगले आवर्तन का निर्धारण होगा।" हमारी वर्तमान अहं-प्रधान प्रकृति जिस प्रकार के विचार भाव मन में जगाती है और जैसे-जो कार्य हमसे कराती है उन सबका अनिवार्य परिणाम होता है : परस्पर विभेद, विलगाव, असामंजस्य। 'मैं' एक दीवार बनकर 'अ-मैं' के सामने आया रहता है। फिर तो "दूसरों का संवेद" होगा ही कैसे? वह धुँधला हुआ रहेगा, बीच-बीच में दरारें खाया हुआ, विकृत। जितने भी नैतिकता के निर्दिष्ट नियम हैं उनकी गति और मान्यता सीमित रहती है : समय से और स्थान से बंधी हुई। इस प्रकार व्यापक आध्यात्मिक दृष्टि का कोई अनुकल्प नहीं होता।

जैसा श्रीअरविन्द कहते हैं : नैतिक की तुलना में आध्यात्मिक चेतना से प्रेरित कर्म-नियम कहीं ऊँचा और श्रेष्ठ होता है। यह नियम आधारित रहता है दिव्य से संयुक्तता पर, अपने को देवी चेतना में समाहित रखने की भाव स्थिति पर; और इसके सारे कर्म कार्यों के मूल में होती है मात्र देवी इच्छाओं के पालन की भावना।" भविष्य का रचना रूप क्या होगा? यह तो तभी प्रकाश में आ सकेगा जब आध्यात्मिक क्रान्ति आ जाये, जीवन-व्यवहार में बनी रहे, और उसके कल्याण कर संजीवन प्रभाव परिणाम समूची धरा पर बिखर-फैल जायें। इस क्रान्ति का साक्षात्कार पहले कुछ व्यक्तियों में होगा, फिर यहाँ-वहाँ सामाजिक स्तर पर और अन्त में समूची मानव जाति में। जीवन का पाँखी उस समय भी विज्ञान और प्रविधि के डैनों उड़ानें भरता होगा, केवल उनका चालक तब यह मानव स्वयं होगा जिसने अपने रोम-रोम को परम आध्यात्मिक चेतना या, कहें तो, सर्जनात्मक अतिमानस की ओर को खोल दिया है।

महत् मानवों की सृष्टि:एक अनिवार्य स्थिति!

-डॉ.शिवप्रसाद सिंह

प्रश्न समन्वय का उतना नहीं है जितना आधुनिक मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों के सही विश्लेषण और उनके रुपान्तरण के व्यावहारिक प्रयोग का है। श्रीअरविन्द हमें 'समन्वय' ही नहीं देते, हम वहाँ विभिन्न तत्त्वों का कुछ-न-कुछ अंश देखकर समन्वय मान लेते हैं, वस्तुतः यह प्राचीन चिन्तन की पीठिका पर उपस्थित किया हुआ आधुनिक मनुष्य के लिए जीवन का पूर्ण, जीवन्त, अतः नितान्त मौलिक स्वभाव का एक अलग दर्शन है, जिसे पुस्तकीय समाधान के रूप में नहीं, व्यवहार में उतारकर उन्होंने परखा, देखा था और बिना परीक्षण के उसे स्वीकार कर लेने से लोगों को मना किया था। यह मानवता की एक नयी 'यात्रा' या 'चलायमान स्थिति' का दर्शन नहीं, बल्कि मानव चेतना में दिव्य चेतना के पूर्णतः अवतरित कराने के प्रयत्न की सुनियोजित दिव्य सहयात्रा है। यह मानवता का नया आनन्दपूर्ण अभियान (Adventure) है, जो एक नयी तरह की गत्वरता और सहकारिता (Intersection) का आह्वान देता है।

आश्रम, सच पूछिये तो, संन्यासियों का मठ नहीं-श्रीअरविन्द और श्रीमाँ की प्रयोगशाला है। यहाँ की कार्यविधियों पर विचार करते हुए डॉ. आयंगर का एक अनुभवपरक विवरण सुनिए -"चाहे कोई आश्रम के वृक्षों के फूलों के बीच गुजरता हो, या शाम के शान्त ठण्डे वातावरण में बैठा हो, या अनिलवरण, पुराणी, नरेन बैनर्जी या दीक्षित द्वारा श्रीअरविन्द की कृतियों की शौक्षिक पाठ-प्रक्रिया से गुजर रहा हो, या मधुर संगीत के स्वरों के लिए दिलीप के आवास पर गया हो, या नलिनी, अमृता, प्रथ्वी सिंह, प्रेमानन्द से सांकेतिक शब्दों का विनिमय कर रहा हो, या सिर्फ कोई साधकों को कार्यरत देख रहा हो, चाहे वे चटाइयाँ बटोर या बिछा रहे हों, या फूल चुन रहे हों या तश्तरियाँ, प्याले और चम्मचों को धोकर सजा रहे हों, या और कुछ न करके दरवाजे पर ड्यूटी कर रहे हों, आपको बरबस होरेस की ये पंक्तियाँ याद आयेंगी, "यदि सत्य की खोज करनी है तो अकेडेमस (Academus) बगीचे में जाओ।"

पाण्डिचेरी का श्रीअरविन्दाश्रम जीवन के हर क्षेत्र में शारीरिक, बौद्धिक, कलात्मक तथा तकनीकी उन्नति की आधुनिक सापेक्षता के बीच नये प्रयोगों के लिए संकल्पित है। इसने अपनी अतिविस्तृत लक्ष्य-दृष्टि के कारण जाति, धर्म, राष्ट्रीयता आदि की सीमाएँ तोड़कर आनेवालों के लिए कर्म की एक नयी दीक्षा दी है। कोई भी कर्म छोटा, बड़ा या नीच या उच्च नहीं होता।

श्रीमाँ ने कर्म का महत्व बताते हुए जो वाक्य कहा है वह भविष्यत् मानवता के लिए जैसे मन्त्र है:

"कर्म शरीर की ओर से ईश्वर के लिए की गयी प्रार्थना है।" श्रीअरविन्द योग कर्म के लिए, ईश्वरीय यन्त्र के रूप में कर्म करने के योग्य बनने के लिए आवश्यक शक्ति का साधन है । उन्होंने राष्ट्र के लिए अपने को संकल्पित करते हुए कहा था-

"यदि तू है, तो तू मेरे अन्तर को जानता है। मैं किसी भी ऐसी चीज की कामना नहीं करता, जो दूसरे चाहते हैं। मैं सिर्फ शक्ति चाहता हूँ ताकि इस देश को ऊँचा उठा सकूँ। देशवासियों के लिए, जिन्हें मैं प्यार करता हूँ, जीवित रहने और कर्म करने की अनुमति चाहता हूँ। मैं इन्हें प्यार करता हूँ। अतः प्रार्थना करता हूँ मेरा जीवन इन्हीं के लिए अर्पित हो।"

बीसवीं शताब्दी के तकनीकी परिवेश में आधुनिक व्यक्ति की टूटती हुई आस्था का संकट आज विश्व में सर्वत्र अनुभव किया जा रहा है। मानवीयता की गरिमा में विश्वास करनेवाले अनेक वैज्ञानिक, समाज-शास्त्री, दार्शनिक तथा धार्मिक व्यक्ति इस संकट से मानवता को बचाने के लिए प्रयत्नशील भी हैं, किन्तु जगत और मनुष्य की चेतना के बीच उत्पन्न आज की भयानक खाई को पाटने में वे प्रायः कर्तव्यविमूढ़-से लगते हैं।

फिर भी इस दिशा में होनेवाले प्रयत्नों को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। जे. वॉश तथा इ. के. नाटिंघम, तथा जे. एम. इंगर जैसे लोगों ने धार्मिक समाज-शास्त्र का एक नया रुप सामने उपस्थित किया है, जिसका मूल उद्देश्य है समाज में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा बरकरार रखने के लिए धर्म को महत्व देना और उसके आधुनिक रूप को अधिक से अधिक स्वीकार्य बनाने का प्रयत्न करना। हीगेल, काम्टे, स्पेंसर आदि दार्शनिकों ने अपने ढंग से आधुनिक मनुष्य के लिए नयी चिन्तनधारा उपस्थित करने का प्रयत्न किया। इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका शायद क्रिश्चियन वैज्ञानिकों और समाजशास्त्रियों की रही है।

इनकी मुख्य स्थापना यह है कि विज्ञान की उन्नति के कारण अनेक ऐसी समस्याएँ पैदा हो गयी हैं जो मनुष्य की भौतिक समृद्धि के बावजूद उसकी अन्तरात्मा की शान्ति, सुख और सुरक्षा को नष्ट करने का कारण बनी हैं। जी. डी. यारनाल्ड ने अपनी पुस्तक 'द स्पिरिचुयल क्राइसिस ऑफ सायंटिफिक एज' में बड़े विस्तार के साथ इस स्थिति का विश्लेषण किया है। उन्होंने मानव जीवन में उत्पन्न विभिन्न परिवर्तनों के कारण इस प्रकार गिनाये हैं :

1. *प्राकृतिक विज्ञान ने मनुष्य को ऐसी शक्ति दे दी है कि वह प्रकृति पर, वस्तुओं पर, शासन करने लगा है जबकि वैज्ञानिक विकास के पहले वह इसका स्वप्न भी नहीं देख सकता था। वह अब हर वस्तु पर जो समझी जा सकती है, आधिपत्य स्थापित करने की स्थिति में हो गया है।*

2. *औद्योगिक विकास के कारण वस्तुओं के व्यापक स्तरीय-उत्पादन ने व्यक्ति को मशीन का पुर्जा बना दिया है, जबकि वह उसके पहले एक व्यक्तित्व रखने वाला निर्माता था, जो स्वतन्त्र दृष्टिकोण रख सकता था।*

3. *अणुशक्ति के आविष्कार ने एक ऐसी शक्ति का उद्घाटन कर दिया है जो अब तक की सभी अर्जित शक्तियों में महत्तम है। इसके ऊपर नियन्त्रण के प्रश्न ने राष्ट्रों के भीतर भारी वैमनस्य और अलगाव तथा शंका का भाव पैदा कर दिया है। ये सारी समस्याएँ वैज्ञानिक ज्ञान के व्यावहारिक लाभ के लिए व्यापक पैमाने पर किये जाने वाले प्रयोगों के कारण उत्पन्न हुई हैं।*

इस विश्लेषण से बहुत दूर तक सहमत हुआ जा सकता है, पर प्रश्न है कि क्या समाधान के लिए हम घड़ी की सुइयों को पीछे कर सकने में सफल हो सकते हैं? शायद नहीं। अत: इन समस्याओं का किसी भिन्न स्तर पर समाधान ढूँढ़ना होगा। ये सभी विद्वान् इन समस्याओं का समाधान नैतिक पुनर्जागरण में ढूँढ़ना चाहते हैं जो उन्हें ईसा मसीह और ईसाई चर्च (थोड़ा आधुनिक) के माध्यम से ही सम्भव प्रतीत होता है।

यारनाल्ड ने स्पष्ट लिखा है कि, "यदि मानव जाति ईश्वरीय नियम का विरोध जारी रखती है, जो कि ईसा के जीवन में अभिव्यक्त हुआ है, तो वह पूर्णतः ध्वंस के लिए अभिशप्त है।" डॉ. जेनर जो इधर के वक्त में बहुत बड़े दार्शनिक का स्थान या खिताब पाने लगे हैं, इसी प्रकार से ईसाईयत के पूर्वाग्रह से ग्रस्त हैं।

श्री एफ. सी. हैपोल्ड ने अपनी पुस्तक 'रिलिजियस फेथ ऐंड ट्वेण्टिएथ सेंचुरी मैन' में भी इसी स्तर का बड़ा विशद विश्लेषण किया है। उनका भी निष्कर्ष इसी तरह का है, यद्यपि उन्होंने इसे और भी अधिक व्यापक बनाने का प्रयत्न किया है, क्योंकि वे एक ईसाई की अपेक्षा एक रहस्यवादी की भूमिका अदा करना चाहते हैं। इसी कारण वे धार्मिक संकोच की दीवार तोड़ सके हैं। इस पुस्तक के अन्तिम परिशिष्ट में समस्या और समाधान को बड़े जोरदार शब्दों में रखने का प्रयत्न किया गया है। वे भी मानते हैं कि "इस दुनिया में कुछ हो रहा है। मानव जाति ने अपना खेमा बटोर लिया है और वह एक बार पुन: चलायमान हुई है। राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संस्थान; धार्मिक और धर्मनिरक्षेप विचारधाराएँ; और तरह-तरह के दृष्टिकोण-सभी गड्डमड्ड हो रहे हैं। पुरानी नींवें हिल गयी हैं और आदर्श थोथे पड़ गये हैं, नयी आध्यात्मिक शराब अब पुरानी बोतलो में नहीं भरी जा सकती।"

हैपोल्ड की पुस्तक बड़ी चर्चित हुई। शायद इसलिए कि यह बड़ी सरल भाषा में आधुनिक युग के आस्था-विदीर्ण व्यक्ति के लिए एक रहस्यवादी आध्यात्मिकता का संदेश देती है। इस पुस्तक की अनेक धाराणाएँ श्रीअरविन्द के चिन्तन का सरलीकरण प्रतीत होती हैं।

उदाहरण के लिए एफ. सी. हैपोल्ड का यह निष्कर्ष देखें, "आधुनिक स्थितियों के हमारे विश्लेषण से यह मालूम होता है कि हम उस क्रांतिकारी आध्यात्मिक और मानसिक विकास के दौर से गुजर रहे हैं, जो हमें बहुत ऊँचा बनाने के लिए आया है। ऐसे दौर इतिहास में पहले भी आ चुके हैं। जो कुछ हमारे चतुर्दिक हो रहा है, वह मानव-चेतना का विस्तार है, वह मानव समूह आत्मा के भीतर घटित होनेवाली प्रज्ञा का विस्तार और स्वाभाविक विकास है।"

हैपोल्ड के इस प्रसिद्ध सूत्र - "जो ईश्वर को सब जगह नहीं देखता, वह उसे सत्य ही कहीं नहीं देखता है" का मूल वक्ता आध्यात्मिक संत भी हमारा जाना-पहचाना है। उन्होंने गीता के कर्मयोग की पुष्कल प्रशंसा की है। इस अध्यात्म समन्वय को, जिसे वे 'इण्टर सेक्शन सिद्धान्त' कहते हैं एकदम ताजा दृष्टिकोण कहा जाये या नहीं, जैसा कि पुस्तक के आवरण पृष्ठ पर कहा गया है, यह प्रश्न शायद उत्तर की अपेक्षा नहीं रखता।

प्रश्न समन्वय का उतना नहीं है जितना आधुनिक मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों के सही विश्लेषण और उनके रुपान्तरण के व्यावहारिक प्रयोग का है। श्रीअरविन्द हमें 'समन्वय' ही नहीं देते, हम वहाँ विभिन्न तत्त्वों का कुछ-न-कुछ अंश देखकर समन्वय मान लेते हैं, वस्तुतः यह प्राचीन चिन्तन की पीठिका पर उपस्थित किया हुआ आधुनिक मनुष्य के लिए जीवन का पूर्ण, जीवन्त, अतः नितान्त मौलिक स्वभाव का एक अलग दर्शन है, जिसे पुस्तकीय समाधान के रूप में नहीं, व्यवहार में उतारकर उन्होंने परखा, देखा था और बिना परीक्षण के उसे स्वीकार कर लेने से लोगों को मना किया था। यह मानवता की एक नयी 'यात्रा' या 'चलायमान स्थिति' का दर्शन नहीं, बल्कि मानव चेतना में दिव्य चेतना के पूर्णतः अवतरित कराने के प्रयत्न की सुनियोजित दिव्य सहयात्रा है। यह मानवता का नया आनन्दपूर्ण अभियान (Adventure) है, जो एक नयी तरह की गत्वरता और सहकारिता (Intersection) का आह्वान देता है।

इस सन्दर्भ में १० दिसम्बर, १९७० के 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' का 'क्या यह समाप्ति है' शीर्षक अग्रलेख बड़ा महत्त्वपूर्ण है। मानव-स्थितियों के निरीक्षक इधर भविष्य के बारे में बहुत निराशाजन्य धारणा बनाने लगे हैं। कुछ कहते हैं कि तीस वर्षों में ही अन्तिम क्षण आनेवाला है। यार्क के पादरी डॉ. डोनाल्ड कागैन सातवें दशक की विराट् समस्या बन गये हैं। ऐसे लोगों का कहना है कि आणविक संकट नयी पीढ़ी को ध्वंस की ओर जाने के लिए प्रेरित कर रहा है। अज्ञात के इस भय ने लोगों को बेचैन होकर इधर-उधर दौड़ने के लिए विवश कर दिया है।

डॉ.एलक् वेडलर, जो खुद एक प्रसिद्ध विद्वान और श्री मालकोम मुगेरिज के मित्र हैं, सोचते हैं कि हम लोग एक ऐतिहासिक प्रक्रिया में इस कदर फँस गये हैं जो हमें सर्वनाश की ओर तेजी से ले जा रही है। इनकी यह निराशापूर्ण धारणा

किसी तिक्तता के कारण नहीं, बल्कि हमारे चतुर्दिक छाये संकट की शान्त दिमाग से की गयी समीक्षा से उत्पन्न हुई है। 'पतझड़ी संस्कृति के लक्षण' के हिसाब से समाज पर तकनीकी आधिपत्य, सत्तालोभ, निरन्तर बढ़ती हुई अनैतिक और अनाध्यात्मिक अराजकता, मनुष्य की सुरक्षा के प्रति बढ़ते हुए खतरों में जो केवल आणविक युद्ध से ही नहीं, बल्कि वायुमंडल के निरन्तर जहरीला होते रहने और अंतर्नाक्षत्रिक साधनों के अनुचित शोषण से पैदा हुए हैं , देखे जा सकते हैं।

अन्धकार के इन भविष्यवक्ताओं से सम्पादक ने पूछा, "क्या ऐसा नहीं कि चूँकि मानव-मूल्यों में तेजी से परिवर्तन आ रहा है इसलिए भविष्य अनिश्चित-सा लगने लगा है? इफेसस के हेराक्लिटस ने कहा था कि हर चीज अस्थिर स्थिति में है। नदी उसी वक्त बदल जाती है, जब वह बहना शुरू करती है, पर नदी तो वही होती है यद्यपि उसकी भंवर में फँसा व्यक्ति हमेशा सोचता है कि वह डूब जायेगा। सर्वनाश के इन भविष्यवक्ताओं के पास सभी चीजों के उत्तर हों ही, कोई जरूरी नहीं। ऐसी हालत में अनन्त जगत् और शाश्वत चेतना के बारे में सोचना कहीं अच्छा है। यदि यह जाति नष्ट भी हो गयी, तो निश्चय ही कालान्तर में, एक महत् मानवों (Homo-superior) की जाति जन्म लेगी। इसी आशा में विवेक और बुद्धिमता भी है।" श्रीअरविन्द के लिए यह सिर्फ आशा की नहीं, पहले से बेहतर परिवर्तन की अनिवार्य स्थिति है। इस संकट को उन्होंने उषा के पहले का अन्धकार कहा था, जिसके भीतर से महत् मानव उदित होने वाला है। उनका चित्त एक क्षण के लिए भी इन संकटों से संशयग्रस्त नहीं हुआ, ऐसा कहना तो उनके जीवन्त व्यक्तित्व का मूल्य घटाना होगा। उन्होंने खुद लिखा है, तो तुम सोचते हो कि मेरे भीतर कभी संदेह नहीं हुआ, निराशा नहीं हुई या इस तरह के दूसरे प्रत्यवाय नहीं आये-मैंने हर खतरे का सामना किया, जो मनुष्य को भोगने होते हैं अन्यथा मैं उन्हें यह आश्वासन देने में असमर्थ होता कि 'इन पर भी विजय पायी जा सकती है।' इसी विश्वास में उनकी आशा और आस्था का रहस्य निहित है। श्रीअरविन्द हमारे लिए या किसी भी आधुनिक बौद्धिक के लिए एक चुनौती हैं। आप उन्हें अस्वीकार कर सकते हैं, दरकिनार नहीं।

अपनी इसी विचित्रता के कारण वे लोगों को 'अबूझ' लगते हैं। वे क्रान्तिकारी थे, राज्याधिकारी नहीं, वे महान विद्वान थे पर अहंकारी नहीं, वे बहुत बड़े चिन्तक थे, चिन्तित नहीं, वे परम गम्भीर थे, पर उन्हें व्यंग्य-विनोद से चिढ़ नहीं थी, वे योगी थे, पर संन्यासी नहीं। वे आध्यात्मिक थे, पर चमत्कारी नहीं। वे कवि थे, पर प्रचारी नहीं, वे अनेक शिष्यों से घिरे थे, पर सर्वाधिकारी नहीं, वे प्राचीन की सारी विभूतियों को बटोर कर वर्तमान में स्थित हो उन्हें विकसित करते रहे और अन्ततः भविष्य में अतिक्रान्त कर गये। इसी अर्थ में वे सचमुच के उत्तर योगी थे।

श्रीअरविन्द

-सुरेन्द्रनाथ जौहर

जन्म तो सभी बच्चे के रूप में ही लेते हैं और माँ की गोद में पलते हैं। फिर सब संसार के प्रवाह और वातावरण में अलग-अलग रूप धारण कर लेते हैं। और ऐसी यह सृष्टि आपके सन्मुख है।

इनमें से ही जिस बच्चे का साथ में यह चित्र है वे श्रीअरविन्द बन गये-महाज्ञानी, महायोगी, महाऋषि और उन्होंने भविष्य की एक ऐसी नयी बात की खोज की कि यह बन्दर से चलकर जो मनुष्य बना है यहीं रुकने वाला नहीं है। यह तो नया रूप धारण करके आगे नयी जाति का मनुष्य बनने वाला है।

अब इनकी कहानी यह है कि १५ अगस्त १८७२ में इन्होंने जन्म लिया-कलकत्ता में। लेकिन कलकत्ता में जन्म लेने का अर्थ यह नहीं कि ये कलकत्ता के थे या बंगाली थे। उन्होंने जन्म सारे संसार के लिए लिया। पैदा तो कहीं होना ही था।

पहले इसके कि इनकी कहानी बतायी जाये कि ये स्टाइल में सूटेड-बूटेड क्यों खड़े हैं, आप सुनकर हैरान होंगे कि उनके जन्म-दिन १५ अगस्त १९४७ पर ही हमारा देश आजाद हुआ, मानो आजादी उनको जन्मदिन पर उपहार के रूप में मिली हो। उस दिन श्रीअरविन्द ने स्वयं यह कहा कि यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है। यह तो मेरे संकल्प पर भगवान की स्वीकृति की मोहर है।

चलिये अब इनकी कहानी सुनिये। अभी छ: वर्ष के ही हुए थे कि इनके पिताजी ने इन्हें इंगलैण्ड पढ़ने भेज दिया। इसलिए कि वे इंगलैण्ड जाकर पूरी अंगरेज़ी सभ्यता के साहेब बन जायें और कहीं हिन्दुस्तानी सभ्यता की छूत न लग जाये।

इंगलैण्ड में लन्दन के हैरो स्कूल में भर्ती कर दिये गये जो अच्छी से अच्छी पश्चिमी शिक्षा और संस्कृति का केन्द्र था, पढ़ने लग गये, खूब पढ़े, हमेशा क्लास में फर्स्ट ही फर्स्ट आने लगे। अंगरेज़ी में अंगरेज़ बच्चों को भी मात कर दिया। और यह चित्र इंगलैण्ड में बचपन में स्कूल की अवस्था का है, तभी तो शान से खड़े हैं।

अब क्या हुआ कि पढ़ते ही चले गये। एक से दूसरी क्लास, स्कूल से कॉलेज और वहाँ की यूनिवर्सिटी की सब परीक्षाएँ पास कर लीं। इतना ही नहीं, और बहुत-सी दूसरे मुल्कों की भाषाएँ भी सीख लीं। पिताजी घर में बैठे बहुत खुश हो रहे थे कि मेरा बेटा अरविन्द घोष साहेब बन जायेगा। उनका नाम भी वहाँ अरविन्दा अक्रायड घोष रख दिया गया। अब इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा में पहुँचे। उसको बहुत ऊँचे दर्जे में पास कर लिया और फर्स्ट आये तथा चार भाषाओं में इतने ऊँचे अंक लिये जो तब तक किसी ने नहीं लिये थे। उसको अंगरेज़ी में कहते हैं कि रिकार्ड तोड़ दिया। परन्तु घुड़सवारी की जो आवश्यक परीक्षा थी, वह नहीं दी।

आत्मा-जिसको आग जला नहीं सकती, पानी बहा नहीं सकता, कोई शस्त्र काट नहीं सकता, उस आत्मा को भला अंगरेज़ी संस्कृति कैसे बदल सकती थी? ऐसी महान आत्मा के अन्दर तरह-तरह के क्रान्ति के संकल्प चल रहे थे और उन्होंने कहा कि मेरे अन्दर इस समय तीन पागलपन हैं:

१. जब तक भारत माँ को अंगरेज़ पिशाचों की बेड़ियों और जंजीरों से छुड़ा नहीं लिया जाता जो हमारी माँ की छाती पर बैठकर उसका खून चूस रहे हैं और यहाँ की धन-दौलत अपने देश में भेज रहे हैं-तब तक मैं चैन नहीं लूँगा।

२. संसार की सब धन-दौलत भगवान की है। हम उस में से केवल अपने निर्वाह के लिए खर्च कर सकते हैं। उसके अतिरिक्त सब पैसा और मनुष्य के सब गुण भगवान के काम में अर्पित होने चाहियें। उसमें से कुछ भी अधिक खर्च करना चोरी और डकैती है।

३. सभी मनुष्य एक या दूसरे रूप में भगवान, अल्लाह या गॉड का नाम लेते हैं। अगर सचमुच भगवान है तो उसे ढूँढ़कर ही छोड़ूँगा।

विद्यार्थियों के लिए

आज का मनुष्य भी कोई मनुष्य है! आधा पशु, आधा मानव! यह तो सोचने और बोलनेवाला तकरीबन जानवर ही है। अपने को बड़ा पढ़ा-लिखा, होशियार, समझदार, सभ्य और सुशिक्षित कहता है। लेकिन है क्या?

उसने आज अपने चारो ओर कैसी भयानक दुनिया बसा ली है! कितना अज्ञान, कितनी जहालत, कितनी दीवारें, कितने भेद-भाव-काले, पीले और गोरे रंग के; कितने झगड़े-धर्म के, जाति के, भाषा के, प्रांतीयता के, दलों के, वादों के, सीमाओं के!

ऐसे क्रान्तिकारी भावों के फलस्वरूप उन्होंने निश्चय किया कि डिप्टी कमिश्नर हरगिज नहीं बनेंगे, अंगरेज़ों की गुलामी नहीं करेंगे। कुछ और ही अचम्भा करके दिखायेंगे। स्वदेशी आन्दोलन का चक्र चलाया कि अंगरेज़ों के मुल्क की बनी हुई कोई चीज मत खरीदो, न इस्तेमाल करो। देश के प्रान्त-प्रान्त में क्रान्तिकारी आन्दोलन का संघटन किया और अंगरेज़ों को पिस्तौल और बन्दूक से मार भगाने की लड़ाई शुरू कर दी।

एक दिन पकड़े गये और जेल में डाल दिये गये। बड़े-बड़े गम्भीर मुकदमे चलाये गये। कचहरी में अंगरेज़ मजिस्ट्रेट के सामने पेश किये गये और सरकारी वकील ने उनके विरुद्ध जुर्मों की बौछार करनी शुरू की। इतने में अकस्मात भगवान की तरफ से भेजे बहुत बड़े वकील श्रीयुत् देशबन्धु चित्तरंजन दास आ खड़े हुए। मुकदमों में कसूर यह बताया गया कि ये अपनी माँ को अंगरेज़ पिशाचों के चंगुल से छुड़ाना चाहते हैं और उनको कहते हैं कि घर जाओ नहीं तो तुम्हें मार-मार कर भगा देंगे।

भला यह भी कोई जुर्म हुआ? यह भी कोई कसूर हुआ? अगर कोई डाकू हमारे घर में डेरा डाल कर हमको लूट रहा हो तो क्या हम उसको मार भगा नहीं सकते? देशबन्धु जी ने कचहरी के कटघरे में खड़े श्रीअरविन्द की ओर इशारा करते हुए कहा-आज का विरोध, आज का उपद्रव और आन्दोलन शान्त हो जाने के बहुत बाद और जब ये इस धरती पर नहीं होंगे, तब सारी दुनिया देशभक्ति के कवि, राष्ट्रीयता के मसीहा और मानवमात्र के प्रेमी के रूप में इनका अभिनन्दन करेगी। इनकी वाणी न केवल देश में वरन् सुदूर सागर के पार भी गूँजती रहेगी। इसलिए मैं कहता हूँ कि यह व्यक्ति न सिर्फ आज कानून की अदालत के सामने खड़ा है बल्कि इतिहास की अदालत के सामने भी न्याय माँग रहा है।

कसूर साबित नहीं हुआ। हारकर सरकार को उन्हें छोड़ना पड़ा। तो भी इस चक्कर में एक साल का कारावास भोगना ही पड़ा।

जेल क्या थी! उन्हें तो जेलर, वार्डन, कैदी यहाँ तक कि जेल के सींखचों और दरवाज़ों में भी भगवान ही भगवान दिखायी पड़ने लगे। ऐसे ही क्षणों में उन्हें भगवान का आदेश हुआ कि माँ की बेड़ियाँ तो कट ही जायेंगी। मुल्क तो आज़ाद हो ही जायेगा। अंगरेज़ों को तो जाना ही पड़ेगा। परन्तु, यह मनुष्य तो वैसा ही रहेगा। उसकी वृत्तियाँ तो ऐसी ही रहेंगी। अंगरेज़ों के चले जाने पर और आज़ादी मिल जाने पर तो और भी दुःख बढ़ जायेगा और हजार तरह की समस्याएँ और विघ्न-बाधाएँ बढ़ जायेंगी और देश अन्धेर नगरी बन जायेगा। उस आज़ादी का क्या लाभ होगा? क्या मनुष्य नहीं बदला जा सकता? चलो आसमान की सैर करें और उसका कोई रास्ता ढूँढ़े।

पुलिस कोई न कोई बहाना ढूँढ़ कर जेल से निकलते ही उन्हें फिर पकड़ लेना चाहती थी। श्रीअरविन्द ने चालाकी की और पुलिस को चकमा देकर नाव में बैठ कर समुद्र के रास्ते पांडिचेरी पहुँच गये। पांडिचेरी फ्रांस के अधिकार में था और वहाँ अंगरेज़ कुछ नहीं कर सकते थे।

छोटा-सा कमरा लेकर धूनी रमा दी। भारतवर्ष में तहलका मच गया। नेता लोग उनके पास पांडिचेरी पहुँचने शुरू हुए। उनको समझा-बुझा कर वापस लाने की कोशिश करने लगे कि कांग्रेस की बागडोर संभालें और भारत को अंगरेज़ी हुकूमत के पंजे से छुड़ायें।

लेकिन उनको कैसे समझाया जाता कि यहाँ तो नक्शा ही बदल गया है। भारत को छुड़ाने की बात नहीं रही। यह तो मनष्यु की वृत्तियों को बदलने की बात है कि नयी किस्म का मनुष्य बनाया जाये जो आज की दुविधाओं और झंझटों से, दुःख-क्लेश और रोग-पीड़ा से मुक्त हो। सदा आनन्द की अवस्था में रह सके।

आज का मनुष्य भी कोई मनुष्य है! आधा पशु, आधा मानव! यह तो सोचने और बोलनेवाला तकरीबन जानवर ही है। अपने को बड़ा पढ़ा-लिखा, होशियार, समझदार, सभ्य और सुशिक्षित कहता है। लेकिन है क्या?

आज के इन्सान ने अपने चारों ओर कैसी भयानक दुनिया बसायी है। कितना अज्ञान, कितनी ज़हालत, कितनी दीवारें, कितने भेद-भाव काले, पीले और गोरे रंग के; कितने झगड़े-धर्म के, जाति के, भाषा के, प्रांतीयता के, दलों के, वादों के, सीमाओं के!

हाइड्रोजन और ऐटम बम बना-बना कर दूसरे मुल्कों को तबाह करने के षड्यन्त्र और तैयारियाँ। कितने हजार टन बम रोज गिराये जा सकते हैं! किस-किस मुल्क को हमला करके कब्जे में किया जा सकता है और किस तरह दूसरे मुल्कों की

अर्थ व्यवस्था को तबाह किया जा सकता है!

यह भी कोई मनुष्य हुआ? लेकिन मज़ा यह कि अपनी बुद्धि के अहंकार में समझता है कि जो कुछ प्रकृति या भगवान को बनाना था, मैं बन चुका हूँ और मुझसे बेहतर भगवान और बना ही क्या सकता है! यहाँ तक कि भगवान का भी मुकाबला करने लगा।

परन्तु प्रकृति ऐसे अधूरे, बेसुरे, अधकचरे, झगड़ालू, असन्तुष्ट इन्सान से कैसे सन्तुष्ट हो सकती थी? बेचैन–परेशान, बहमी, बदहवास तथा बीमार आदमी को सृष्टि का सरताज कैसे बना सकती थी? ऐसे झूठे, रिश्वतखोर, धोखेबाज, मक्कार, चोर-लुटेरा, लोभी-लालची और छली-कपटी मानव को विकास की अन्तिम सीढ़ी कैसे मान सकती थी? ऐसा भूला-भटका-भ्रान्त, लकीर का फकीर मनुष्य सृष्टि का नमूना हो ही कैसे सकता था?

जिसका ब्लड-प्रेशर जब चाहे नीचा हो जाये, जब चाहे ऊँचा हो जाये। जिसके हार्ट का भी भरोसा नहीं, जब चाहे फेल हो जाये।

भगवान ने इतनी सुन्दर दुनिया बसायी। हजारों किस्म के रंग-बिरंगे खुशबूदार फूल-पत्ते - गुलाब-गेंदा, जूही, चमेली, कचनार, कुमुदनी, कमल तरह-तरह के फल - आम, अंगूर, सेब, सन्तरा, अनार, तरह-तरह के पशु - हाथी, चीते, हिरन, गाय, बैल, खरगोश; तरह-तरह के पक्षी - तोते, मोर, कोयल, मैना, तितर, बटेर; रिमझिम बरसती वर्षा, सतरंगा इन्द्रधनुष, सूर्य, चाँद, तारे, सूर्योदय, सूर्यास्त, पारदर्शी झीलें, रंग-बिरंगी थिरकती मछलियाँ, समुद्र, पहाड़, हिमपात, नदियाँ, मीठी तुतली बोली बोलने वाले सुन्दर भोले बालक, एक-एक मनुष्य, उसका विचित्र जीवन, सुख-दुख भरे क्षण। संसार का उपभोग करने के लिए इतना सुन्दर शरीर, पानी, हवा, गर्मी-सर्दी, कितनी-कितनी अनमोल वस्तुएँ बेमोल दी हैं। किन्तु मनुष्य को देखो, इसको कुछ भी दिखायी नहीं देता! इतना सब कुछ पाने पर भी उसमें कृतज्ञता का नामोनिशान भी नहीं है।

ऐसे अधूरे अशान्त इन्सान को बदलना ही होगा। श्रीअरविन्द ने निश्चय किया कि मैं ऐसे मनुष्य को अतिमानव बदल कर ही चैन लूँगा।

यह निश्चय होते ही प्रकृति में हलचल मच गयी। फ्रांस देश से चलकर श्रीमाँ आ गयीं। श्रीअरविन्द को देखते ही पहचान लिया। बोलीं- "आप ही को तो मैं खोज रही थी।" श्रीअरविन्द ने कहा-"मैं आपकी ही प्रतीक्षा कर रहा था।"

इन अलौकिक शक्तियों के संयोग से श्रीअरविन्द आश्रम का जन्म हुआ। श्रीमाँ ने आश्रम की बागडोर सम्भाल ली। साधना के द्वार खोल दिये गये। कहा गया- "जिसको भगवान के रास्ते पर चलना हो, भगवान पर अपना जीवन निछावर करना हो , जिसे अतिमानव बनना हो, वह आये।"

तरह-तरह के मनुष्य, प्रान्त-प्रान्तर से, दुनिया के कोने-कोने से, रंग-बिरंगे, तरह-तरह की मनोवृत्तियों, तरह-तरह के संस्कारों और तरह-तरह की बोलियाँ बोलने वाले लोग आने लगे। उनके रहने- सहने, खाने-पीने, काम-धन्धे की श्रीमाँ ने ऐसी व्यवस्था कर दी कि देखकर आश्चर्य होता था।

मनुष्य को बदलने का भार, उसकी शिक्षा-दीक्षा और चेतना की जिम्मेदारी श्रीमाँ ने अपने हाथों में ले ली। वे साधारण इन्सान को अतिमानव बनने की तरफ ले जाने की राह दिखाने लगीं।

उनको बदलने के लिए आश्रम एक बहुत बड़ी लेबोरेटरी बन गया, ताकि उनकी प्रवृतियों के अनुसार उनको भिन्न भिन्न प्रयोगों में से निकालकर अतिमानव का रूप दिया जा सके।

बहुत बड़ा शिक्षा केन्द्र खोल दिया गया - श्रीअरविन्द इन्टरनेशनल सेण्टर आफ एजुकेशन, जिसमें हर प्रकार की शिक्षा व ज्ञान देने का प्रबन्ध कर दिया ताकि बचपन से ही मनुष्य अतिमानस की ओर जाने के लिए शिक्षा प्राप्त कर सके।

क्रमशः भारतवर्ष की राजधानी में श्रीअरविन्द आश्रम दिल्ली शाखा की स्थापना हुई और वहाँ श्रीअरविन्द की समाधि प्रतिष्ठित की गयी। मातृ-कला मन्दिर और श्रीअरविन्द अन्तरराष्ट्रिय विद्यालय भी स्थापित हो गये।

भारतवर्ष तथा दूसरे देशों में श्रीअरविन्द केन्द्र बन गये और अब स्थान-स्थान पर मनुष्य की चेतना के अनुसार श्रीअरविन्द की समाधियाँ प्रतिष्ठित हो रही हैं।

गाँव-गाँव, नगर-नगर, प्रान्त-प्रान्त, और देश-देशान्तर में श्रीअरविन्द सोसायटी बन गयी। भविष्य की तैयारी के लिए एक अन्तर्राष्ट्रिय नगर (International city) की स्थापना हो गयी, जिसे ऑरोविल (Auroville) कहते हैं। यहाँ विश्व के कोने-कोने से श्रीअरविन्द के जीवन-दर्शन और भावी दृष्टि के अनुसार एक नये विश्व के लिए काम करने वाले लोग आकर बसने लगे। मानव एकता के लिए यह एक महान आध्यात्मिक प्रयास है। यहाँ एक नये और अधिक पूर्ण मानव के निर्माण की आधार शिला रखी जा रही है जहाँ धीरे-धीरे मनुष्य अतिमानस की ओर अग्रसर होगा। और इस श्रीअरविन्द जन्मशताब्दी के वर्ष भागवत मुहूर्त्त (Hour of God) में प्रकृति में बहुत-कुछ हलचल होने वाली है।

श्रीअरविन्द के संकल्प - १५ अगस्त, १९४७ के सन्देश की पूर्ति की ओर बंगलादेश तो बन ही चुका है और पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के बीच, मित्रता का बीज भी बोया जा चुका है।

सन् १९२६ में श्रीअरविन्द 'अन्दर' चले गये। अन्दर जाने का मतलब है कि उन्होंने अपने को संसार की चहल-पहल से काट लिया और ब्रह्माण्ड के आकाशों में विचरने लगे। साधारण अतिमानव बनाने के लिए रास्ते और सड़कें बनाने लगे।

यह जानकर आश्चर्य होगा कि चौबीस वर्षों तक एक ही कमरे में अपने को बन्द करके उन्होंने इतने शास्त्र लिखे जितने किसी युग में इस धरती पर किसी ने भी नहीं लिखे होंगे।

इस साधनाकाल में तप कर श्रीअरविन्द ने बताया कि मनुष्य का अतिमानव बनना अनिवार्य है। उन्होंने कहा- "मनुष्य जिसमें बौद्धिक ज्ञान है, प्रकृति के साथ, ज्ञानपूर्वक और स्वेच्छा से मेल बिठाकर चले तो अतिमानव बनने में देर नहीं लगेगी। उसको आनन्द भी मिलेगा और श्रेय भी।" श्रीअरविन्द और श्रीमाँ ने इसी काम को करने के लिए इस धरती पर अवतार लिया।

श्रीअरविन्द का कहना है - इस संसार के विकास में पत्थर से वनस्पति, वनस्पति से पशु और पशु से मनुष्य बना है। विकास की इस लड़ी में मनुष्य अन्तिम कड़ी नहीं है। बीच की अवस्था में है। उसे बदलकर अतिमानव बनना है। यह अतिमानव सूक्ष्म रूप में आज भी उसके अन्दर है। जिस दिन मनुष्य का अहं मिटेगा उसी दिन उसमें छिपा अतिमानव प्रकट हो जायेगा। तब उसके ज्ञान का सूत्र सीधा उस विराट शक्ति से जुड़ जायेगा। तब उसकी आवश्यकताएँ सीधी वहीं से पूरी होंगी। विकास की दृष्टि से उस अतिमानव के सामने आज का मानव वैसा ही होगा जैसे आज हमारे सामने घोड़े, गदहे, बैल, भेड़, बकरी। उस अतिमानव के चेहरे पर प्रतिपल, प्रतिक्षण, आठों याम कुछ ऐसा अलौकिक प्रकाश, ऐसी पवित्र आभा दिखेगी, जिसे जो भी देखेगा वही विमुग्ध हो उसी राह पर चलने के लिए तत्पर हो उठेगा।

हे मनुष्यों! इस भागवत मुहूर्त्त में अतिमानव बनने की इस दौड़ में क्या तुम भी शामिल होना चाहते हो? भविष्य की ओर छलांग लगाना चाहते हो? श्रीअरविन्द की दिखायी यह राह तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।

धन्य होंगे वे जो भविष्य की और छलांग लगायेंगे। भगवान का आशीर्वाद सदा उनके साथ होगा।

१५ अगस्त १९७२ की बातें

-आर. आर. दिवाकर

श्रीअरविन्द भारत और दुनिया को आधुनिक संसार और इसकी भीतरी आकांक्षाओं के अनुरुप सन्देश देने में विशिष्ट योग्यता रखते थे। यद्यपि वे सात वर्ष की अवस्था में ही अपनी भारतीय संस्कृति और देश की छाया से दूर हो गये थे, परन्तु लगभग २१ वर्ष की अवस्था में जब उन्होंने इंगलैण्ड से लौटकर भारत के अपोलो बन्दर पर चरण रखा, तो रोमांचित हो उठे। यह अनुभूति पूरब और पश्चिम के बीच विश्लेषण की शुरुआत थी। एक ओर उन्होंने देखा कि दुनिया इतिहास की समझ, वैज्ञानिक पद्धति, संगठनात्मक ढाँचे, लोकतन्त्र और उद्योग तथा कई अन्य बातों के लिए पश्चिम की ऋणी है, पर भारत की प्राचीन बुद्धिमता, एक वास्तविकता है। भारत केवल प्राचीन नहीं है, वह सनातन है, बलशाली है, सबको शरण देनेवाला है। अपनी सारी अक्षमता के बावजूद वह अब भी सृजनात्मक है।

भारतीय प्रति वर्ष विश्वव्यापी स्तर पर १५ अगस्त को स्वाधीनता दिवस मनाते हैं। यही महान देश-भक्त और आधुनिक युग के आध्यात्मिक नेता श्रीअरविन्द का जन्म-दिन भी है। हर साल की तरह उनका जन्म-दिन हर केन्द्र और खासतौर से पांडिचेरी में मनाया जाता है। इस वर्ष के समारोह का खास महत्व है क्योंकि इस बात के दूरगामी निर्णय लिये गये हैं कि विश्व के कोने-कोने में उनका उद्धारक सन्देश पहुँचाया जाये।

मानवता संकट में भी है और चौराहे पर भी। हथियारों के कारण संकट है। ये अस्त्र छिपे और खुले दोनों तरह से रखे गये हैं और इनमें आणविक भी हैं और परम्परागत भी। ये न केवल मानवता और मानव सभ्यता को बल्कि धरती पर सम्पूर्ण जीवन स्पंदन को भी बरबाद कर सकते हैं। हिरोशिमा पर बम-पात की घटना के बाद जब आइंस्टीन से पूछा गया कि मानवता (विनाश के बाद-सं) किन अस्त्रों से लड़ेगी, उन्होंने पश्चाताप के साथ कहा-धनुष बाण से! इस कथन के सत्य होने की चेतावनी मिल रही है।

मानवता आज चौराहे पर है क्योंकि इसे या तो विज्ञान, टेकनोलॉजी और कम्प्यूटर प्रधान और जिसकी लाठी उसकी भैंसवाली भौतिकता या आध्यात्मिक और उच्चतर मूल्यों की संगतिवाली और प्रेम और हितों की समानता के अनुशासन वाली आध्यात्मिकता के बीच चुनाव करना है। परिणाम में विज्ञान और आध्यात्मिकता में संश्लेषण का वर्चस्व होगा क्योंकि कल्पना नहीं की जा सकती कि मानवता आत्मघात करेगी; पर जब तक ऐसा नहीं होता तब तक हिचक और परम्परागत शंकाओं का बोलबाला रहेगा।

ऐसी घड़ी में आदमी को एक आश्वासनदायी आवाज चाहिये, जो मानवता के भविष्य में नयी आस्था को जन्म दे सके। चारों ओर अंधकार के बावजूद स्वाभाविक उषा का वादा होना चाहिये। विध्वंसकारी शक्तियों के जंगली नाच के बावजूद भविष्य के गर्भ में जीवनदायिनी रचनात्मक शक्ति का आश्वासन चाहिये। इस तथ्य के बावजूद कि आदमी का मर्त्य पिंड भौतिकशास्त्र और रसायनशास्त्र के नियमों के अधीन है, आत्मा की अमरता की सूचना होनी चाहिये क्योंकि बुनियाद का कुछ बचा रहेगा, यदि पदार्थ और जीवन तथा चेतना की ब्राह्मी क्रिया को जारी रहना है। यदि और कुछ नहीं तो जीवन और अस्तित्व के नियम तो अस्तित्व मान रहेंगे ही। अनस्तित्व कभी भी अस्तित्वमान नहीं रह सकता। भगवान आत्महत्या नहीं कर सकता, यद्यपि वह सर्वशक्तिमान है। वह आत्मघात की शक्ति का बहिष्कार करेगा।

दूसरा महत्वपूर्ण आशावादी वस्तु मानवता की विकासमानता का तथ्य है। विकास बन्द नहीं हुआ है, रुक नहीं सकता। अस्तित्व और जीवन सम्पूर्ण प्रक्रिया के नाते विकास से जुड़ा हुआ है। यदि विकास की प्रक्रिया अब तक आदमी की चेतना के परे थी और ब्राह्मी गति के खण्ड के नाते चल रही है, अब समय आ गया है आदमी के चेतन, आत्मचेतन होने का और वह जानता है कि कहाँ जा रहा है। वह यह जानने में सक्षम है कि उसे कहाँ और क्यों जाना चाहिये। वह जानता है कि उसे कहाँ नहीं जाना चाहिये। एकता, सुख, सक्रिय शांति, प्रेम की उसकी अत्यन्त भीतरी आकांक्षा, पदार्थ और मन के वर्तमान आयामों को उर्ध्वमुखी बनाने की उसकी कामना, विकास के भविष्यत स्तरों की सूचक है। यही आत्म-ज्ञान, चेतना के उच्चतम स्तरों तक जाने की जड़ीभूत अन्तःप्रेरणा उसका आह्वान करती है कि वह मानव की विकास-यात्रा में सचेष्ट और चेतन साझीदार हो।

जो कुछ अस्तित्वमान है, न केवल उसकी पूर्णता की दिशा में बल्कि चेतन प्रयास और साधना के जरिये मानसिक परिवर्तन से उत्पन्न होती नयी मानवता की दिशा में मानवी चेष्टा में भारत की भूमिका को श्रीअरविन्द ने भाँप लिया था।

श्रीअरविन्द भारत और दुनिया को आधुनिक संसार और इसकी भीतरी आकांक्षाओं के अनुरुप सन्देश देने में विशिष्ट योग्यता रखते थे। यद्यपि वे सात वर्ष की अवस्था में ही अपनी भारतीय संस्कृति और देश की छाया से दूर हो गये थे, परन्तु लगभग २१ वर्ष की अवस्था में जब उन्होंने इंगलैण्ड से लौटकर भारत के अपोलो बन्दर पर चरण रखा, तो रोमांचित हो उठे। यह अनुभूति पूरब और पश्चिम के बीच विश्लेषण की शुरुआत थी। एक ओर उन्होंने देखा कि दुनिया इतिहास की समझ, वैज्ञानिक पद्धति, संगठनात्मक ढाँचे, लोकतन्त्र और उद्योग तथा कई अन्य बातों के लिए पश्चिम की ऋणी है, पर भारत की प्राचीन बुद्धिमता, एक वास्तविकता है। भारत केवल प्राचीन नहीं है, वह सनातन है, बलशाली है, सबको शरण देनेवाला है। अपनी सारी अक्षमता के बावजूद वह अब भी सृजनात्मक है।

१९०५-०६ में वह राजनीतिक संघर्ष में कूद पड़े और परुष स्वदेशी आन्दोलन के तूफानी वाहक बन गये। पर इससे वे संतुष्ट नहीं हो गये, क्योंकि उनकी देशभक्ति पश्चिम किस्म की ही नहीं थी। इसकी जड़ें गहरी थीं, क्योंकि वे न केवल स्वाधीन राष्ट्रों की पांत में एक और राष्ट्र को जोड़ देने भर के लिए हिन्दुस्तान की आजादी चाहते थे। इसलिए १९१०में वे पांडिचेरी के एकान्तवास में चले गये और वहाँ उन्होंने पूर्ण योग अपरम्परावादी, मौलिक और नयी थी। वे १९५०में दिवंगत हो गये पर इतना लिखकर छोड़ गये जो कई वृहदाकर खण्डों में है और शिष्यों को छोड़ गये जो सारी दुनिया में फैले हुए हैं। उनके नाम से प्रचलित पांडिचेरी का आश्रम अब भी है जो उनके विचारों और आदर्शों को परिपुष्ट कर रहा है।

श्रीमाँ की महान मेघा और सांगठनिक प्रतिभा असरदार है और सैकड़ों आस्तिक पुरुषों तथा महिलाओं ने अपने स्वधर्म का पालन करते हुए अपना जीवन समर्पित कर दिया है और पूरे आश्रम के सम्पूर्ण जीवन में योगदान कर रहे हैं। देश और विदेश के हजारों लोग आश्रम में आते हैं और प्रभावित होते हैं। भारत और दूसरें देशों में छोटी और बड़ी संगोष्ठियाँ होती हैं, अध्ययन करती हैं और अपने अनुकूल साधना का पालन करती हैं।

१५ अगस्त १९७२ इस आधुनिक ऋषि की जन्म शताब्दी है। वे नवयुग के अग्रदूत और भग्न दुनिया की आशा हैं। अपने आप में वे एक खास किस्म के देशभक्त, आदर्शवादी सामान्य आदमी की पहुँच से परे त्रिकालज्ञ योगी तथा मानव-विकास के पैगम्बर थे। यह सब जानकर हम लाभान्वित होंगे। ज्ञान और बुद्धिमता के मानव-कोष में जो कुछ उन्होंने जोड़ा, जिन आदर्शों के लिए वे जिंदा रहे, चिंतन करते और कर्म करते रहे, उसका सम्पूर्ण उभार और उसकी अर्थवत्ता उनकी शताब्दी में परिलक्षित होगा। ○○○○

भारत की ओर यूरोपीय अभिमुखता

-रामकुमार 'कृषक'

परिवर्तन के जिस दौर से वह आज गुजर रही है, वह बहुत ही नाजुक और महत्वपूर्ण है। प्रकाश और तम की शक्तियों का संघर्ष बाह्य जगत में उतना नहीं हो रहा, जितना अन्तर्जगत में। और इस संघर्ष में प्रकाश की शक्तियों की विजय स्पष्ट दिखायी देने लगी है। पाश्चात्य षड़यंत्रों का शिकार विखण्डित एशिया अब पुनः भावात्मक रूप से एकता की दिशा में कदम बढ़ा रहा है और जो यूरोपीय मनोवृत्ति संघर्ष के द्वारा विकास करने के सिद्धान्त को प्रथम स्थान देती थी, वह भी अब सामंजस्य को प्रश्रय देने लगी है। सिद्धान्तों, विचारों, स्वार्थों, जातियों और वर्गगत कलह के कारण विघटित हुआ विश्व आज एकता के लिए छटपटा रहा है। भौतिक परिवर्तनों की अनियंत्रित झंझाओं ने यूरोपीय मन को झकझोर कर रख दिया है और वैज्ञानिक विकास के शोर-शराबे में वह अपनी आत्मा के जिस स्वर को सुनने से इन्कार कर रहा था, उसे सुनने की ललक उसमें फिर जागी है।

वर्तमान शताब्दी के पिछले दो-तीन दशक प्रावैधिक और वैज्ञानिक विकास की दृष्टि से अत्यन्त अग्रवर्ती रहे हैं। परन्तु साथ ही, मनुष्य के मानसिक तनाव और तज्जनित सामाजिक घुटन के मामले में भी उनकी गति उससे कम नहीं रही है। मानव-जीवन से सम्बद्ध आज का बहुमुखी विकास कोई स्वस्थ विकास नहीं है, वह तो मनुष्य की बीमार भौतिकवादी बौद्धिक क्षमता मात्र का परिचायक है। भौतिक संसाधनों को जुटाने की उद्दाम पिपासा के वशीभूत बीसवीं सदी का मनुष्य अध्यात्म के स्वर्ण-शिखरों की छाया तक से दूर भागने की चेष्टा में लगा है। यही कारण है कि आत्म-ज्ञान से विरत, प्रगतिगामिता का मुखौटा लगाये आज का मनुष्य अपने वातावरण पर नियंत्रण करने के बावजूद अपने ऊपर नियंत्रण करने में नितान्त असफल सिद्ध हो रहा है। एक ओर यदि उसने प्रकृति पर विजय पायी है—वह चाँद तक पहुँचा है, तो दूसरी और अपनी असंयत मन:स्थितियों, दुष्वृत्तियों के समक्ष पराजित भी वही हुआ है।

जागतिक आवश्यकताओं को देखते हुए भौतिक विकास कोई बुरा नहीं है - वह होना चाहिये, परन्तु जहाँ वह मनुष्य की आत्मिक चेतना को नकारने लगता है वहीं उसके दुष्परिणामों की काली छाया भी मानव-जाति पर मंडराने लगती है। पाश्चात्य जगत की परेशान और उद्‌भ्रान्त मनःस्थिति इस मान्यता को असंदिग्ध रूप से प्रमाणित कर रही है, जबकि उसकी भौतिकवादी लहर अपने अकूत दुष्परिणामों के साथ विश्व भर पर हावी है। लेकिन, शायद इसीलिए, एक बेचैनी, एक कसमसाहट, भौतिक सुख-साधनों के बावजूद एक घुटन मानव-मन को किसी अज्ञात शाश्वत आश्रय की खोज की दिशा में ठेल रही है। और ठेल-ठाल, यह खोज वहीं से आरम्भ हुई है, जहाँ पर उसे एकदम विस्मृत कर दिया गया था। सन्देह नहीं कि अनन्त का यह अनाहद-संकेत शुभ है - शुभ का आश्वासन है। देखना सिर्फ यह है कि मानवजाति इस संकेत को कहाँ तक पकड़ पाती है अथवा कहाँ तक इस आश्वासन के योग्य स्वयं को वह बना पायेगी।

पाश्चात्य और पौर्वात्य - दोनों संस्कृतियाँ आज परस्पर अभिमुख हैं। पश्चिम पूरब की ओर भाग रहा है और पूरब पश्चिम की ओर। गिटार वीणा के संगीत पर मुग्ध है और वीणा गिटार के शोर पर। यह बात नहीं कि भिन्न संस्कृतियों की ऐसी अभिमुखता भूतकाल में नहीं रही, रही है पर आज का यह सांस्कृतिक आभिमुख्य कुछ विशेष अर्थ लेकर आया है और इस विशेष अर्थ को सार्थक करने का बड़ा उत्तरदायित्व भारत पर है।

उन्नीसवीं सदी के दसवें दशक में स्वामी रामतीर्थ ने दो महत्वपूर्ण भविष्यवाणियाँ की थीं। पहली यह कि भारत बीसवीं

सदी के ठीक पूर्वार्द्ध में स्वतन्त्र होगा और दूसरी यह कि उसी के उत्तरार्द्ध में वह अपनी पूर्व गरिमा को प्राप्त कर विश्व का आध्यात्मिक नेतृत्व करेगा। इतिहास साक्षी है कि उनकी पहली भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई और दूसरी होने जा रही है। इस आशा का आधार भारत का वर्तमान राजनीतिक नेतृत्व अथवा बंगला देश से सम्बद्ध उसकी नैतिक विजय नहीं है, यद्यपि इसकी पूर्णता की दिशा में यह एक आयाम अवश्य है। आधार इसका वही है जिसका संकेत ऊपर दिया जा चुका है। यानी भौतिक उपलब्धियों के बावजूद संत्रस्त और असंतुष्ट मानव जाति द्वारा किसी शाश्वत आश्रय की खोज। पाश्चात्य जगत में इस खोज की अभीप्सा ही नहीं जगी है, बल्कि वह आरम्भ हो चुकी है। अपने-आप से ऊबा हुआ पश्चिम अध्यात्म की दिव्य भूमि भारत की आत्मानुभूत संस्कृति को समझने और अपनाने का प्रयास कर रहा है। अध्यात्म के महा पृष्ठों पर खिंची उन लकीरों को पढ़ने की चेष्टा में लगा है, जिनमें भावी विश्व की भाग्य लिपि निबद्ध है।

उसको, इसी प्रयास में सहयोग देने का उत्तरदायित्व हम पर है। हमें समझना चाहिये कि जिस भौतिकवादी दृष्टिकोण के कारण पश्चिम संत्रस्त है, उसे किस सीमा तक हम अपनायें। हमारी अस्मिता अध्यात्म की है और उसी से अनुस्यूत है हमारी संस्कृत। अध्यात्म आत्मा की परिपोषक शक्ति है, इसी से भारतीय संस्कृति आत्म-प्रधान है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति और सभ्यता अध्यात्म और आत्मा की चिरंतन शक्ति से सम्बलित लाखों-लाख आघात सहकर भी विलुप्त नहीं हुई है। मानव-जीवन के मूलभूत आदर्शों और सिद्धान्तों की शाश्वत भित्ति पर खड़ी भारतीय संस्कृति आज भी समस्त विश्व को कल्याणकारी मार्ग पर आगे बढ़ाने में पूर्णतः सक्षम है। भारत का अतीत महान और महत् रहा है, इसलिए श्रीअरविन्द के शब्दों में 'भूतकाल के आदर्शों की महत्ता इस बात का आश्वासन देती है कि भविष्य के आदर्श और भी महान होंगे।' क्योंकि उन्हीं के शब्दों में-'अतीत प्रयास एवं शक्ति-सामर्थ्य के पीछे जो कुछ निहित था उसका विस्तार ही किसी संस्कृति के जीवित होने का एक मात्र स्थाई प्रमाण होता है।'

सन्देह नहीं कि भारत करवट ले रहा है। लेकिन इसमें भी सन्देह नहीं कि उसकी इस करवट को रोकने के दुष्प्रयास भी जारी हैं। पश्चिम के गलित और कुष्ठित सांस्कृतिक आक्रमण राष्ट्र के युवावर्ग को अपने षड़यंत्र का शिकार बनाने की सतत चेष्टा में हैं। एक हद तक उन्हें सफलता भी मिल रही है, लेकिन अंततः उनकी असफलता निश्चित है। कारण, राष्ट्र की प्रज्ञा जागरूक है और वह पाश्चात्य सांस्कृतिक षड़यंत्रों बारीकियों को समझ-बूझकर उनका प्रतिकार करने को उठ खड़ी हुई है। आवश्यकता है तो मात्र यह कि पूरे राष्ट्र की आत्मा को जगाया जाये। महत्व शरीर का उतना नहीं है, जितना आत्मा का - भले ही वह व्यक्ति हो या राष्ट्र। भारत ने जो करवट ली है, उसमें जो जागृति आयी है; उसका सम्बन्ध उसके शरीर और मनीषा से अधिक है - आत्मा से कम। राष्ट्र की आत्मा अभी पूर्ण जागृत नहीं हुई है। उसकी पूर्ण जागृति का ही महत प्रयास हमें करना है।

१५ अगस्त, १९४७ को भारतीय स्वाधीनता और अपने जन्म-दिवस पर दिये गये एक सन्देश में श्रीअरविन्द ने कहा था कि 'भारत उठ रहा है और वह केवल अपने ही भौतिक स्वार्थों को सिद्ध करने के लिए नहीं, अपनी ही प्रसारता, महत्ता, सामर्थ्य और सम्पदा अर्जन करने के लिए नहीं, बल्कि भगवान के लिए, जगत के लिए समस्त मानवजाति के सहायक और नेता के रूप में जीवन-यापन करने के लिए उठ रहा है।' श्रीअरविन्द का यह सन्देश भारतराष्ट्र के भविष्य का सही स्वरूप विश्व के सामने रखने में समर्थ है। भावी भारत की सार्थकता ही इसमें है, उसका धर्म ही यह है। यही उसके स्वभाव के अनुरूप भी है। अध्यात्म-स्पंदित भारतीय संस्कृति समन्वय की संस्कृति है, प्यार और स्नेह से अनुप्राणित है उसका हृदय। उसका आग्रह त्याग और सहिष्णुता के प्रति है। छल-कपट, मार-काट में उसका विश्वास नहीं। मानवात्मा के उदात्त गुणों से ही उसका लगाव है और आत्मा की तीन दिव्यताएं ही उसका आदर्श हैं। सत्व का संधान ही उसका धर्म है और अन्धकार से प्रकाश की ओर गमन ही उसकी गति। परमानन्द की प्राप्ति ही उसकी अभीप्सा है और वही उसका स्वार्थ।

मानव-मूल्यों के इस संक्रमण काल में हम भारतीय जनों को अपनी संस्कृति के इन्हीं उदात्त तत्वों को ग्रहण कर आचरित करना है। अन्यथा यह असम्भव नहीं कि भारत की करवट निरर्थक चली जाये। यदि ऐसा हुआ तो मानव जाति को ढूँढ़े भी कहीं ठौर नहीं मिलेगा। संसार का विवेकवान मानव-समुदाय इस तथ्य को भली प्रकार समझ रहा है कि यदि भारत के आध्यात्मिक आदर्शों को जीवन में न उतारा गया तो विनाश निश्चित है। ज्यों-ज्यों वर्तमान शताब्दी बीत रही है, त्यों-त्यों

भारत अध्यात्म-दुंदुभी की अनुगूँज विश्व भर में अधिकाधिक सुनी जा रही है। तमाम यूरोप में भौतिकता की ठीक छाती पर चढ़कर अध्यात्म-अनुप्राणित धार्मिक आन्दोलनों का बोलबाला है। मनुष्य चन्द्रमा पर जा बसे या मगंल पर अथवा अपने सौर मण्डल की परिधि के पार किसी अन्य ग्रह पर चला जाये, शांति और सुख उसे तभी मिलेगा जब उसके अन्तर में वह होगा। और अन्दर की यह, सुख-शान्ति तब तक प्राप्त नहीं की जा सकती जब तक मानव-जीवन अध्यात्म से परिचालित, परिपोषित न हो।

हमें यह निश्चित रूप से मान लेना चाहिये कि भौतिकवादी भोग-विलास से अस्त यूरोपीय मन आज जो भारत की ओर अभिमुख हुआ है उसका युगान्तकारी महत्व है। यह सब यों ही नहीं हो रहा, बल्कि इसके पीछे अनन्त के अदृष्ट हाथ हैं। भारत विश्व का कोई सामान्य देश नहीं है, न ही यह इस पृथ्वी का साधारण भू-खण्ड है। यह तो अध्यात्म की भूमि है। विश्व-नियंत्रक की लीला-स्थली है। यही सभ्यता और संस्कृति की गंगोत्री-यमुनोत्री है। यही वह राष्ट्र है, जिसने युगों पूर्व राम और कृष्ण को जन्म दिया-इसलिए कि विश्व की तमिस्त्रा का विनाश किया जा सके। इसी के नीर-क्षीर में वह विलक्षणता है कि तम की शक्तियों से परिचालित दस्युओं का हृदय-परिवर्तन होता है। भारत में जन्म लेने वाला व्यक्ति विश्व में गौरव का भागी है-मानव जाति में उसका विशेष स्थान स्वतः बन जाता है। इसलिए यह भी हमारा सहज उत्तरदायित्व हो जाता है कि मानव जाति के लिए हम विशेष कार्य करें। दिग्भ्रमित हुए बिना युग की गति को पहचानते हुए हम, विशुद्ध भारतीय बने रहकर अपने लिए नहीं विश्व के लिए कार्य करें। और भारतीय होने के नाते विश्व के लिए, मानव जाति के लिए हमारा विशेष कार्य यदि कोई हो सकता है, तो मात्र अध्यात्म का प्रचार-प्रसार। इसी से विश्व की वर्तमान भयावह समस्याओं का समाधान सम्भव होगा। कोई भी परिवर्तन, जो अध्यात्म से अनुप्राणित नहीं है, स्थाई नहीं हो सकता। इसी मूलभूत तथ्य को समझते हुए विश्व को बदलना है और इसी के लिए हमें बदलना है - परन्तु विश्व के अनुसार नहीं; अपने अनुसार, अध्यात्म आधारित अपनी सांस्कृतिक धाराओं के अनुसार।

भारत के भावी विकास, उसके कार्य, उसकी गति, उसकी नियति के सारे सूत्र उसके अतीत में सुगुम्फित हैं। मानव जाति के कल्याण-कर्म की दिशा में बढ़ने के लिए उसे कहीं अलग से सूत्र खोजने की आवश्यकता नहीं है। सभी-कुछ उसके पास है। श्रीअरविन्द ने भारत की इस महानता को अपने दिव्य ग्रन्थों में सविस्तर वर्णित किया है। 'भारतीय संस्कृति के आधार' में उन्होंने भारत के मूल भाव के प्रति निष्ठावान बने रहने का निर्देश करते हुए लिखा है - 'भारत की प्रकृति, उसका भगवन्निर्दिष्ट कार्य, उसका कर्तव्य कर्म, पृथ्वी की भवितव्यता में उसका भाग, वह विशिष्ट शक्ति जिसका वह प्रतिनिधि है - यह सब उसके विगत इतिहास में लिखा हुआ है और यही उसके वर्तमान कष्टों और अग्नि परीक्षाओं का गुप्त प्रयोजन है। हमें अपनी आत्मा के बाह्य रूपों का पुनर्गठन करना होगा; किन्तु प्राचीन रूपों के पीछे विद्यमान आत्मा को ही हमें उन्मुक्त करना और उसकी सुरक्षा करते हुए उसे नये और ओजस्वी विचार-प्रतीक, सांस्कृतिक मूल्य, नये उपकरण एवं महत्तर रूप प्रदान करने होंगे। और जब तक हम इन सारभूत वस्तुओं को मान्यता देते रहेंगे और इनके मूलभाव के प्रति निष्ठावान रहेंगे, तब तक अवस्थाओं के अनुकूल अत्यन्त उग्र ढंग की मानसिक या भौतिक व्यवस्थाएँ एवं अत्यन्त चरम कोटि के सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिवर्तन करने से भी हमें कोई हानि नहीं होगी। परन्तु स्वयं इन परिवर्तनों को भी भारत की ही भावना एवं साँचे के अनुरूप ढालना होगा, किसी अन्य भावना एवं साँचे के अनुरूप नहीं।'

ज्यों-ज्यों वर्तमान शताब्दी बीत रही है, त्यों-त्यों भारत की अध्यात्म-दुंदुभी की अनुगूँज विश्व भर में अधिकाधिक सुनी जा रही है। तमाम यूरोप में भौतिकता की ठीक छातीपर चढ़कर अध्यात्म-अनुप्राणित धार्मिक आन्दोलनों का बोलबाला है। मनुष्य चन्द्रमा पर जा बसे या मंगल पर अथवा अपने सौर मण्डल की परिधि के पार किसी अन्य ग्रह पर चला जाये, शांति और सुख उसे तभी मिलेगा जब वह उसके अन्तर में होगा।

वस्तुतः मानव जाति अब एकीकरण की ओर चल पड़ी है। इसलिए परिवर्तन के जिस दौर से वह आज गुजर रही है, वह बहुत ही नाजुक और महत्वपूर्ण है। प्रकाश और तम की शक्तियों का संघर्ष बाह्य जगत में उतना नहीं हो रहा, जितना अन्तर्जगत में। और इस संघर्ष में प्रकाश की शक्तियों की विजय स्पष्ट दिखायी देने लगी है। पाश्चात्य षड़यंत्रों का शिकार विखण्डित एशिया अब पुनः भावात्मक रूप से एकता की दिशा में कदम बढ़ा रहा है और जो यूरोपीय मनोवृत्ति संघर्ष के द्वारा विकास करने के सिद्धान्त को प्रथम स्थान देती थी, वह भी अब सामंजस्य को प्रश्रय देने लगी है। सिद्धान्तों, विचारों, स्वार्थों, जातियों और वर्गगत कलह के कारण विघटित हुआ विश्व आज एकता के लिए छटपटा रहा है। भौतिक परिवर्तनों की अनियंत्रित झंझाओं ने यूरोपीय मन को झकझोर कर रख दिया है और वैज्ञानिक विकास के शोर-शराबे में वह अपनी आत्मा के जिस स्वर को सुनने से इन्कार कर रहा था, उसे सुनने की ललक उसमें फिर जागी है। इसके लिए हमें उसका उपहास करने की आवश्यकता नहीं है, विपरीत इसके ध्यान यह रखना है कि यूरोपीय जूठन को अपनाने के पागलपन में कहीं हम स्वयं उपहासास्पद न बन जायें। हमें अपने गले को बचाते हुए ही उसे गले लगाना है। पाश्चात्य प्रकृति के किसी धर्म में रूपान्तरित न होते हुए भारत के सनातन स्वधर्म का ही नये ढंग से सृजन करना है। यह भारत की अग्निपरीक्षा का समय है और अपने लिए नहीं, मानव-जाति के कल्याणार्थ हमें इसमें सफल होना ही होगा। राष्ट्र का यह संकल्प होना चाहिये और इस संकल्प की परिपूर्णता के लिए श्रीअरविन्द के शब्दों में 'आवश्यकता केवल इस बात की है कि जिस वस्तु को हम आत्मा के अन्दर सदा ही जानते आये हैं उसे जीवन में पूर्णरूपेण कार्यान्वित करें। हमारी अतीत संस्कृति के मूल आशय और भविष्य की परिपाश्विक आवश्यकताओं में जिस सामंजस्य की जरूरत है उसका रहस्य उसी में है, अन्य किसी चीज में नहीं।'

संसार का वर्तमान युग है महान रूपांतरणों की अवस्था का युग। मानवता के मन में एक नहीं, बहुत से मूलभूत भाव क्रियाशील हैं और उसके जीवन में उग्र चपेट और चेष्टा के साथ परिवर्तन ले आने को छटपटा रहे हैं; और यद्यपि इस आन्दोलन का केन्द्र प्रगतिशील यूरोप में है फिर भी विचारों के समुद्र-मंथन में पुराने भावों और संस्थाओं के इस तोड़ मरोड़ में पूरब भी अधिकाधिक खिंचता चला जा रहा है। कोई भी राष्ट्र अब अधिक देर तक मनोवैज्ञानिकतः आधुनिक जगत की एकता से अलग अपने-आप में ही सीमित नहीं रह सकता। यह भी कहा जा सकता है कि मनुष्य का भविष्य सर्वाधिक उस उत्तर पर निर्भर करता है जो पूरब, रहस्य रमणी (स्फिंक्स) की आधुनिक पहेली को देगा, विशेषकर भारत, जो एशियाई भाव के गम्भीर आध्यात्मिक रहस्यों का पूज्य संरक्षक है।

-श्रीअरविन्द

परम्परा में महायोगी श्रीअरविन्द

-जे. पी. तिवारी

किसी भी योग-साधना में उसके लक्ष्य का प्रश्न उपस्थित होता है। यदि लक्ष्य सीमित है तो उसके साधन भी तदनुकूल होंगे। पूर्ण योग की प्रतिष्ठा के पूर्व अधिमानसिक स्तर तक के योग साधन किये जाते रहे हैं। कदाचित् वैदिक एवं उपनिषद्काल में कुछ साधकों ने प्रतिमानस की कल्पना की थी, पर उसे प्राप्त नहीं किया जा सका था पूर्णयोग का लक्ष्य प्रतिमानसिक क्षेत्र की उपलब्धि है, जहाँ सभी सूत्रों का समीकरण होता है, यह मनुष्य द्वारा प्राप्त की जा सकने वाली सम्भवतः सर्वोत्कृष्ट स्थिति है।

सनातन धर्म अन्य धर्मों की तरह कोई एक निश्चित मताचार और एक पुस्तकीय धर्म नहीं है, वरन्, एक सतत् प्रयास है, जो दीर्घ काल से मनुष्य, ब्रह्माण्ड एवं उससे परे सर्वशक्तिमान परमेश्वर को समझने एवं पाने के लिए उन्मुख रहा है। कालचक्र में अनेक विचार-धाराएँ एवं पद्धतियाँ इस उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होती आयी हैं, पर उनमें से अनेक समय के प्रभाव में कालगत भी होती गयीं। सनातन धर्म ने फिर-फिर प्रयास कर इसे कालानुकूल एवं अग्रमुखी बनाने का प्रयास किया है। पर इस क्रिया में ऐसे भी अनेक विचारों एवं पद्धतियों का जन्म हुआ जो सनातन धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों से पूरा तालमेल नहीं रखते थे, अतः युग-युग में उन्हें सम्यक् दिशा देने के लिए इस देश में अनेक अवतार एवं विभूतियों का जन्म होता रहा।

भगवान श्रीकृष्ण के उपरान्त भक्ति मार्गियों एवं तांत्रिकों के विशिष्ट पर सीमित प्रयास के अतिरिक्त, अन्य कोई दीर्घक्षेत्री प्रयास इस दिशा में नहीं किया जा सका था। इसी बीच श्रीकृष्ण के अन्तरंग, महायोगी श्रीअरविन्द का अवतरण १५-०५-१८७२ को हुआ, जिन्होंने अपने पूर्णयोग की उपलब्धि के द्वारा सनातन धर्म को, एक विशिष्ट प्रेरणा एवं गन्तव्य प्रदान किया। महायोगी ने अपनी अधिमानसिक स्थिति में सनातन धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों को सत्य पाया, परन्तु अनन्त को समझने एवं पाने की कोई सीमा नहीं हो सकती, अस्तु महायोगी ने सनातन धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों को सत्य पाने के बाद भी अपनी खोज जारी रखी एवं वर्तमान समय की सर्वश्रेष्ठ आध्यात्मिक उपलब्धि अतिमानसिक चेतना को प्राप्त किया।

महायोगी के पूर्ण योग में, सनातन धर्म के विभिन्न अंगों एवं मतादि, जैसे-ज्ञान, भक्ति, कर्म, द्वैत, अद्वैत, अद्वैताद्वैत, विशिष्टा द्वैत, वेद, उपनिषद्, गीता, पुराण, तन्त्र, मन्त्र एवं अन्य शास्त्रीय ज्ञानों को एकांगी रूप में न लेकर समवेत् रूप में लिया गया है। उपरोक्त परम्पराओं में सत्य के एक अंश को ही ग्रहण किया गया है जबकि, विभिन्न मार्गों के सत्यांशों को यदि समवेत् स्वरूप में लिया जाये तो वह विशेष रूप से करणीय हो जाता है और उससे वृहत्तर सत्य की प्रतिष्ठा हो सकती है।

उदाहरण के लिए, कुछ लोग ज्ञान मार्ग, कुछ भक्ति मार्ग तथा अन्य कर्म के द्वारा परमेश्वर-प्राप्ति का प्रयास करते हैं। ज्ञान मार्गी अन्य मार्गों को अनावश्यक समझकर उसे ग्रहण नहीं करते तथा इसी तरह उस सत्यांश से वंचित रहते हैं, यही भूल भक्ति एवं कर्म मार्गी भी करते हैं। पूर्णयोग में इन तीनों का सम्यक समन्वय है, बुद्धि को ज्ञान का, हृदय को भक्ति का तथा शरीर को कर्म का आश्रय है।

द्वैतमार्गी, ब्रह्म एवं जगत, परमात्मा एवं जीवात्मा को अलग-अलग देखते हैं, जीवात्मा परमात्मा के भाव में मग्न होकर, तदाकार होने का प्रयास करती है। अद्वैत-मार्गी एक ब्रह्म को सत्य मानते हैं और जगत को मिथ्या, इसमें जीवात्मा को परमात्मा में विलीन कर देने का प्रयास होता है। अद्वैता-द्वैत मार्गी परमात्मा के एकत्व से निःसृत अनेकत्व में स्थित होकर उससे तदाकार होने का प्रयास करते हैं। विशिष्टाद्वैतमार्गी परमेश्वर के अनेक रूपों में उन्हें ही देखते हुए प्रभु के हो जाते हैं।

पूर्ण योग में इन सभी प्रकार के अनुभवों को सत्य कहा गया है; परमेश्वर एवं उनका विधान किसी एक नियम में बँधे हुए नहीं हैं। पूर्णयोग का मार्गी अपने को उपरोक्त किसी एक पद्धति में सीमित न रख, अपने गुणों सहित भगवती श्रीमाँ की शरण में स्थित होकर सम्यक भाव से परमेश्वर के सर्वांग से एकाकार होने का प्रयास करता है।

मायावादी वेदान्तियों ने जगत को मिथ्या माना है, इसके परिमार्जन की बात नहीं कही है; इन्होंने साधना द्वारा जीवात्मा को मुक्त कर ब्रह्मस्थ होने का प्रयास किया है। उपनिषद् काल के कुछ द्रष्टाओं ने अवश्य 'स्वर' की उपलब्धि का प्रयास किया है। पर सशरीर वे 'स्वर' में प्रवेश न कर सके, न उस चेतना का अवतरण पृथ्वी मण्डल में कर सके। गीता में भी सफल योग द्वारा आवागमन से मुक्त होने की बात कही गयी है, पर इसमें अतिमानस की उपलब्धि एवं भौतिक जीवन के तात्विक रूपान्तर की बात नहीं कही गयी है।

जिस प्रकार वेदान्त एकांगी रहा, उसी प्रकार तन्त्र भी एकांगी रहा। इन दोनों के सत्यांशों के सामंजस्य से अवश्य पूर्णत्व की ओर अग्रसारित हुआ जा सकता है। हमारा दृष्टिकोण परम सत्ता के उभयपक्ष, नाद एवं बिन्दु, गति एवं स्थिरता की ओर होना चाहिये और यह उच्च चेतना तक जाना चाहिये, जहाँ सभी तत्वों, भावों एवं क्रियाओं का एक सूत्र में समीकरण होता है। यह स्थिति अतिमानसिक चेतना में ही है, जहाँ सच्चिदानन्द अपने अनेक स्वरूपों में एक है।

साधक (साधारण) मानसिक स्थिति से साधना द्वारा आगे बढ़ता हुआ, अनेक अन्तरिम स्तरों का भेदन करता हुआ, आध्यात्मिक-मानस की स्थिति में पहुँचता है जहाँ मस्तिष्क अपनी निम्न क्रियाओं को बन्द कर देता है और शुद्ध चेतना (सदात्मा) में निवास करने लगता है और वहाँ स्थिर होकर तदनुरूप आचरण करता है। जब वह उससे आगे बढ़ता है तो इस स्थिति के परे वह इसके समवर्ती (Corresponding) असत् में पहुँचता है जहाँ उपरोक्त स्थिति नकारात्मक हो जाती है और वहाँ मस्तिष्क उस स्थिति की व्याख्या कर सकने में असमर्थ हो जाता है। यह तुरीयावस्था है, बौद्धों का शून्य है और परम अव्यक्त है। इस मानसिक विवेचन के परे गीता के पुरुषोत्तम हैं, उपनिषद् के परापुरुष हैं, सूक्ष्म दृष्टिगम्य पूर्ण प्रकाश है। यहीं अतिमानसिक चेतना का क्षेत्र प्रारम्भ होता है, जहाँ परमेश्वर अपनी पूर्णता में विराजमान हैं।

इसी अतिमानसिक चेतना के अवतरण से पृथ्वी का पूर्ण रूपान्तर हो सकता है। इस परम श्रेष्ठ तत्व द्वारा रूपान्तरित होने पर फिर उसका ह्रास सम्भव नहीं है। इससे निम्नतर चेतनाओं (अधिमानसिक एवं उच्चमानसिक) द्वारा किये गये रूपान्तर में ह्रास सम्भव है, क्योंकि ये मिश्रित स्थितियाँ हैं, परम सत्य नहीं हैं।

इस रूपान्तर की बात को ध्यान में रखते हुए हम देखेंगे कि श्रीअरविन्द की दृष्टि में जगत न तो केवल माया है, न लीलामात्र, न यहाँ का आवागमन एक अज्ञान प्रणाली है, जिससे जीवात्मा को मुक्त होकर उच्च चेतना में लीन हो जाना चाहिये। अपितु वे इस सृष्टि का एक विशेष प्रयोजन देखते हैं, जहाँ गत्यात्मक विकास के क्रम में जड़ प्राण की ओर, अग्रसरित हो रहा है, प्राण मानस की ओर एवं मानस अतिमानस की ओर अग्रसरित हो रहा है, जिससे इस उच्च स्तर पर वह अपने में सच्चिदानन्द को व्यक्त कर सके।

अन्य मार्गों में भी श्रद्धा आदि की बात कही गयी है। साथ ही उक्त मतानुसार अन्य तरीकों पर भी बल दिया गया है, जैसे पाठ, बाह्य पूजन, कीर्तन, मन्त्रोच्चारण, ध्यान, आसन, प्राणायाम, उपवास, व्रत, तान्त्रिक विधियाँ आदि। परन्तु श्रीअरविन्द के पूर्ण योग में उपरोक्त क्रियाओं को गौण स्थान दिया गया है एवं भगवान या भगवती के प्रति पूर्ण समर्पण, असीम श्रद्धा एवं प्रबल अभीप्सा को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। साथ ही निम्न प्रकृति को अस्वीकार कर, चेतना को उससे मुक्त कर, उच्च चेतना में जाने के निर्देश दिये गये हैं। यह द्विपक्षीय प्रयास आवश्यक है, जिससे समर्पण तामसिक या राजसिक होकर अपने अहंकार को ही समर्पित न हो जाये। इस क्रिया को आगे बढ़ाने के पूर्व मस्तिष्क को शान्त एवं शून्य कर लेना आवश्यक होता है।

श्रीअरविन्द द्वारा अतिमानस के पृथ्वी में अवतरित होने से पृथ्वी दिव्य चेतना से आलोड़ित हो चुकी है। इससे अभीप्सा

एवं समर्पण का महत्व बढ़ गया है, कार्य साधन हेतु यदि इन दोनों भावों का समुचित प्रयोग किया जाये तो साधक बहुत लाभान्वित हो सकता है। दिव्य भाव के समीपस्थ होने से तथा उच्च चेतना के अविरल प्रभाव के कारण अन्य जटिल पद्धतियों की आवश्यकता नहीं रह गयी है।

पूर्णयोग में प्रभु के निराकर एवं साकार दोनों स्वरूपों को सत्य माना गया है। सनातन धर्म में वेदोक्त विचारधारा से प्रभावित लोग ईश्वर को निराकार मानते हैं तथा पौराणिक एवं भक्तिमार्गी लोग ईश्वर को साकार भी मानते हैं। वास्तव में सनातन धर्म में दोनों प्रकार की मान्यताएँ हैं। अन्य धर्मावलम्बियों ने सनातन धर्म में ईश्वर की साकार उपासना के लिए बहुत आलोचना की है, उन्हें केवल निराकार स्वरूप ही ग्राह्य रहा है। पर धर्म एवं मध्यात्म के क्षेत्र में उनकी गति सीमित होने के कारण वे साकार स्वरूप की वास्तविकता को नहीं समझ सके हैं। परमेश्वर एक होता हुआ अनेक है, फिर वह सर्वव्यापी और सर्व समर्थ है। अतः उसका शरीर धारण करना भी सर्वथा सम्भव है।

तन्त्र एवं हठयोग में चक्रों का उद्घाटन मूलाधार से विशेष क्रिया द्वारा होता है। परन्तु पूर्ण योग में चक्रों का उद्घाटन किसी भी केन्द्र से हो सकता है। अधिकतर हृद-केन्द्र को जगाने पर बल दिया गया है, क्योंकि चैत्य पुरुष हृद-केन्द्र में स्थित रहता है। इस योग में चैत्य पुरुष को जागृत करने तथा उसके उपरान्त सभी कुछ उस पर छोड़ देने पर बल दिया गया है, क्योंकि यही सच्चा व्यक्तित्व है, जो बाहरी चेतना एवं आवरणों से ढका हुआ है।

दूसरा महत्वपूर्ण केन्द्र भ्रूमध्य है। यदि साधक का सहज भाव में ध्यान इस केन्द्र में स्थित होता है तो इस केन्द्र का सहारा लिया जा सकता है।

किसी भी योग-साधना में उसके लक्ष्य का प्रश्न उपस्थित होता है। यदि लक्ष्य सीमित है तो उसके साधन भी तदनुकूल होंगे। पूर्ण योग की प्रतिष्ठा के पूर्व अधिमानसिक स्तर तक के योग साधन किये जाते रहे हैं। कदाचित् वैदिक एवं उपनिषद्काल में कुछ साधकों ने प्रतिमानस की कल्पना की थी, पर उसे प्राप्त नहीं किया जा सका था पूर्णयोग का लक्ष्य प्रतिमानसिक क्षेत्र की उपलब्धि है, जहाँ सभी सूत्रों का समीकरण होता है, यह मनुष्य द्वारा प्राप्त की जा सकने वाली सम्भवतः सर्वोत्कृष्ट स्थिति है।

उपनिषद्काल में स्वर (Supramental) से तदाकार होने का सर्वोत्कृष्ट प्रयास किया गया था। इस क्रम में तत्कालीन साधकों ने यह अनुभव किया था कि 'स्वर-रश्मियों' तक तो सशरीर साधक जाकर लौट सकता है , पर 'स्वर' में प्रवेश करने पर वह सशरीर वापस नहीं आ सकता। उपनिषद् के स्वर (Sun or Supramental) को अतिमानसिक चेतना क्षेत्र कहा जा सकता है। इने साधकों द्वारा सशरीर 'स्वर-मण्डल' में प्रवेश न कर सकने का कारण सम्भवतः यह था कि उनकी समाधि जागृत न होकर सुषुप्त होती थी। बाद के साधकों ने भी अधिकतर सुषुप्त समाधि ही ली है। महायोगी श्रीअरविन्द की समाधि आरम्भ से ही जागृत रही है। जब शरीर (जड़) का भी परिमार्जन होना है, तब यह है कि जागृत समाधि ली जाये, जिसमें शारीरिक चेतना भी अपना भाग अदा कर सके। तदनुकूल श्रीअरविन्द ने जागृत समाधि के माध्यम से अधिमानसिक एवं अतिमानसिक क्षेत्रों में प्रवेश किया तथा सशरीर उस उच्च चेतना से लौट सकने में समर्थ रहे। यह एक नयी उपलब्धि थी।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पूर्ण योग में वैश्विक सृष्टि को असत्य नहीं माना गया है वरन् सर्वशक्तिमान द्वारा उसके विकासस्वरूप एक से अनेक होने के क्रम में स्वयं भगवान को ही जड़ में प्रतिष्ठित देखा गया है। विकास-क्रम में महाप्रभु अपनी चैतन्य शक्ति द्वारा अनेक से एकत्व की ओर अग्रसरित हो रहे हैं। एकत्व की ओर बढ़ने का अभिप्राय है सत्य, चैतन्य एवं आनन्द की अबाध प्रतिष्ठा।

उपरोक्त कार्य के सम्पादन हेतु महायोगी श्रीअरविन्द अतिमानसिक चेतना प्राप्त करने के उपरान्त जड़ के गहनतम क्षेत्र में उसके रूपान्तर के लिए उतरे। श्रीअरविन्द के पूर्णयोग की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि सर्वोच्च चेतना-स्थल में पहुँचकर उन्होंने उस उच्च शक्ति को निम्नतर चेतना में अवतरित किया जिससे निम्न चेतनाओं का पूर्ण रूपान्तर किया जा सके।

उन्होंने अपने लक्ष्य को व्यक्तिगत सिद्धि का रूप नहीं दिया, अपितु समस्त पृथ्वी के रूपान्तर के लिए धर्मस्वरूप यह प्रयास किया। इससे अध्यात्म के क्षेत्र में एक नया आयाम् प्रस्तुत हुआ। जब तक निम्न चेतना का पूर्ण रूपान्तर नहीं हो जाता, तब तक वर्तमान प्रकरण समाप्त नहीं होगा। और यह कार्य तभी पूर्णरूपेण सम्पादित हो सकेगा, जब अतिमानसिक चेतना इस पृथ्वी पर दृढ़ रूप से स्थापित होगी। इसके पहले इसे शरीरी मस्तिष्क में प्रतिष्ठित करना होगा। इस कार्य को अब भगवती श्रीमाँ द्वारा किया जा रहा है। इस दिव्य चेतना के अवतरण से पंच तत्वों का रूपान्तरण हो सकेगा, मानव प्रतिमानव बन सकेगा। उसकी वर्तमान सीमायें, राग, द्वेष, लोभ, काम, जरा एवं मृत्यु खण्डित एवं परिमाजित की जा सकेंगी। इनका अतिक्रमण कर मानव सही अर्थों में स्वतन्त्र हो सकेगा। यह उपलब्धि अनिवार्य है, बात केवल समय की है।

अपने-आपको दे देना ही है साधना का रहस्य, कोई चीज माँगँ ना और प्राप्त करना नही। जितना ही अधिक कोई अपने-आपको देता है उतना ही अधिक उसमें ग्रहण करने की शक्ति बढ़ती है।

-श्रीअरविन्द

कर्मधारा 1994.अक,2

कालिदास और श्रीअरविन्द

-डॉ. सुरेशचन्द्र त्यागी

श्री अरविन्द के अनुसार "वाल्मीकि, व्यास और कालिदास, भारत के इतिहास का सार तत्व है। यदि और सब-कुछ समाप्त हो जाये तो ये तीनों देश भारत के सांस्कृतिक इतिहास को और पर्याप्त रूप से व्यक्त करते हैं।" उनकी मान्यता है कि ये तीनों क्रमशः तीन आर्य-सभ्यता की तीन मनःस्थितियों शक्तियों (प्रमुख रूप से नैतिक, बौद्धिक और भौतिक) का प्रतिनिधित्व हैं। ये राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना के महाकवि हैं।

यहाँ मेरा उद्देश्य सरस्वती के इन दो वरद पुत्रों की काव्य-प्रतिभा की तुलना करना नहीं अपितु कवि-कुल-गुरु कालिदास के विषय में व्यक्त क्रान्तदर्शी श्रीअरविन्द के विचारों को प्रस्तुत करना है। अनेक पाश्चात्य भाषाओं में निष्णात होकर और उनके साहित्य का गम्भीर अध्ययन करके श्रीअरविन्द इंगलैण्ड से भारत लौटे थे। सन् १८९३ से सन् १९०६ तक का उनका बड़ौदा का जीवन वस्तुत: ज्ञानार्जन का काल है। पूर्वी और पाश्चात्य साहित्य, संस्कृति और सभ्यता का अध्ययन उन्होंने बड़ौदा में ही किया था। अध्ययन और लेखन के अतिरिक्त उनकी रुचि और किसी विषय में नहीं थी। बम्बई की दो फर्मों को उनके स्थायी आदेश थे कि विभिन्न विषयों पर प्रकाशित नवीन पुस्तकें उनके पते पर भेजी जाती रहें। बड़ौदा में ही उन्होंने प्राचीन और अर्वाचीन भारतीय भाषाएँ सीखी थीं। यह उल्लेख प्राप्त है कि बंगला भाषा सीखने में उन्होंने दिनेन्द्र कुमार राय से सहायता ली थी लेकिन संस्कृत, गुजराती, मराठी आदि का अध्ययन स्वयं ही किया था। वैदिक और लौकिक संस्कृत भाषा एवं काव्य तथा काव्य-शास्त्र के गम्भीर ज्ञान का परिचय उनके वेद-रहस्य, गीता-प्रबन्ध, भारतीय संस्कृति के आधार इत्यादि ग्रन्थों में मिलता है। 'भारतीय संस्कृति के आधार' नामक ग्रन्थ में उन्होंने वेदों से लेकर विभिन्न भाषाओं के वैष्णव काव्य तक की विशद समीक्षा की है। संस्कृत भाषा की प्रशंसा करते हुए उन्होंने लिखा है कि "आज तक मानव-मन ने, कम-से-कम आर्य या सेमेटिक जातियों के मन ने, विचार प्रकट करने के जिन साधनों का निर्माण किया है उनमें से विशुद्ध संस्कृत सम्भवतः सबसे अधिक अद्भुत रूप में परिपूर्ण तथा सुयोग्य साधन है।"

वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण, पुराण, रामायण, महाभारत आदि के कवियों के प्रति श्रीअरविन्द ने व्यापक सहानुभूति प्रदर्शित की है और इनकी विशेषताओं का उद्घाटन किया है। लेकिन मेरा अनुमान है कि जिस तरह भाषाओं में संस्कृत के प्रति उनका सर्वाधिक प्रेम है उसी तरह कवियों में कालिदास उनके सर्वप्रिय कवि हैं। उनका स्पष्ट मत है कि "साहित्य में कालिदास से अधिक बहुमुखी, समृद्ध प्रतिभा का अन्य कोई कवि नहीं है।" उन्होंने अपने व्यापक ज्ञान के परिप्रेक्ष्य में कालिदास को दान्ते, एसचिलस, वरजिल और मिल्टन जैसे विश्व कवियों की श्रेणी में रखा है और विभिन्न पहलुओं को लेकर मिल्टन, शेक्सपीयर, वर्डसवर्थ, कीट्स, थॉमसन आदि अंगरेज़ी कवियों से उनकी तुलना की है। यही नहीं, संस्कृत के अन्य कवियों से भी कालिदास की तुलना करते हुए उनके काव्य-सौष्ठव की विशेषताएँ प्रकट की हैं। उन्होंने लिखा है कि "वाल्मीकि, व्यास और कालिदास, भारत के इतिहास का सार तत्व है। यदि और सब-कुछ समाप्त हो जाये तो ये तीनों देश भारत के सांस्कृतिक इतिहास को और पर्याप्त रूप से व्यक्त करते हैं।" उनकी मान्यता है कि ये तीनों क्रमशः तीन आर्य-सभ्यता की तीन मनःस्थितियों शक्तियों (प्रमुख रूप से नैतिक, बौद्धिक और भौतिक) का प्रतिनिधित्व हैं। ये राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना के महाकवि हैं।

कालिदास के युग में एक ओर नैतिक-मूल्यों एवं ज्ञान की विभिन्न शाखा के वर्गीकरण की प्रवृत्ति दिखलायी पड़ती है तथा दूसरी ओर चित्र, वास्तु, गीत, नाटक, नृत्य, आभूषण आदि के रूप में सर्जनात्मक एक सौन्दर्यात्मक उत्साह के दर्शन होते हैं। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि कालिदास के पूर्व इस सबका अस्तित्व नहीं था बल्कि श्रीअरविन्द के विचारानुसार

वास्तविकता यह है कि कालिदास के युग में इनका ही सर्वोच्च महत्व था। कालिदास युगीन शक्ति और चेतना पर इनका सर्वाधिक प्रभाव था। श्रीअरविन्द के शब्दों में "वस्तुतः यह निश्चित तत्व मीमांसा, विज्ञान, विधि-विधान, कला और उस ऐन्द्रिय विलास का महान युग था जो कलाओं के साथ-साथ चलता है।"

कालिदास ऐसे युग के महाकवि थे। श्रीअरविन्द का अनुमान है कि कालिदास धनी, उच्चवर्गीय, कुलीन, विद्वान, अपने युग के वैभवपूर्ण जीवन से पूर्ण परिचित, विभिन्न विज्ञानों के ज्ञाता एवं परम्परागत दर्शनों से परिचित थे। लगता है कि शेक्सपीयर की तरह किसी धर्म के प्रति उन्हें कोई गम्भीर लगाव नहीं था। श्रीअरविन्द ने कालिदास को सौन्दर्य-बोध और ऐन्द्रिय भावना के सर्वोच्च कवि के रूप में स्वीकार किया है। कलात्मक पूर्णता, बिम्ब-विधान, भाषा सौष्ठव एवं नाद-सौन्दर्य की दृष्टि से कालिदास सर्वोच्च कलाकार हैं। उनकी शैली की प्रशंसा करते हुए श्रीअरविन्द लिखते हैं कि साहित्य में उनकी शैली से अधिक पूर्ण और सुसमंजस शैली और कोई नहीं है, पूर्णतः समस्वर और उपयुक्त वाक्-शैली का उनसे अधिक अन्तःप्रेरित, सतर्क और सिद्धहस्त शिल्पी और कोई नहीं है। किसी प्रकार की अति किये बिना प्रत्येक पंक्ति और प्रत्येक पद को समृद्धतम रंग, मोहकता, आकर्षण और मूल्य, महत्ता या उत्कृष्टता अथवा ओजस्विता या मधुरता और सदा ही किसी प्रकार या यथोचित प्रकार के सौन्दर्य की पूर्णतम माला प्रदान करने में उनके समान दिव्य कौशल और किसी में नहीं है।"

कालिदास सौन्दर्य के सफल कलाकार थे। यह सौन्दर्य वस्तु का हो या भाव का, विषय का हो या शिल्प का - वे हर दृष्टि से अप्रतिम हैं। उनकी कलात्मक जागरूकता सर्वत्र दिखलायी देती है। उनके छन्द-विधान के बारे में श्रीअरविन्द लिखते हैं कि "कालिदास को छन्द पर जो परिपूर्ण अधिकार प्राप्त है वह उतना ही महान है जितना कि उनका भाषा-शैली पर प्राप्त परिपूर्ण अधिकार। यहाँ हमें प्रत्येक प्रकार के छन्द में संस्कृत भाषा के शब्द-सामंजस्य की सर्वाधिक पूर्ण उपलब्धियाँ देखने को मिलती है।"

कालिदास का उद्देश्य था अपने युग के भारतीय मन, जीवन और संस्कृति की काव्यमय भाषा में व्याख्या करना तथा इन्हें सार्थक रूपकों और अलंकारों में चित्रित करना। उनके सात काव्यों में प्रत्येक अपने ढंग से, अपनी सीमाओं के भीतर तथा अपने स्तर पर एक अत्युत्तम कृति है। श्रीअरविन्द को इनमें कौन-सा काव्य सर्वाधिक प्रिय था, यह कहना कठिन है। 'विक्रमोर्वशीयम्' का अंगरेज़ी अनुवाद तथा उससे प्रेरणा लेकर 'उर्वशी' नामक स्वतन्त्र काव्य की रचना और इस नाटक के पात्रों पर लिखी सारगर्भित संक्षिप्त समीक्षाएँ देखें तो लगता है कि 'विक्रमोर्वशीयम्' उन्हें प्रिय रहा होगा। पर यह कोई ठोस प्रमाण नहीं है। उन्होंने 'मेघदूत' का भी अनुवाद किया था जो कान्तिकारी गतिविधियों के दिनों में कहीं खो गया और अब तक नहीं मिल सका है। 'कुमारसम्भ' के प्रथम सर्ग का अनुवाद भी प्राप्त है जिससे प्रकट है कि अन्य कार्यों में व्यस्त रहने के कारण वह इसे पूरा नहीं कर सके होंगे। 'ऋतुसंहार' की प्रामाणिकता, विषय-वस्तु और काव्य-सौन्दर्य पर उनके तीन निबन्ध प्रकाशित हैं। अपने समकालीन युग की बौद्धिक, प्राणिक और कलात्मक प्रवृत्तियों का पूर्ण चित्र प्रस्तुत करने वाले कालिदास के काव्य और नाटक श्रीअरविन्द को समान रूप से प्रिय प्रतीत होते हैं। 'कुमारसम्भव' के विषय में उन्होंने लिखा है कि "कुमारसम्भव क्लासिकी संस्कृत में उसी ऊँचाई पर स्थित है जिस पर अंगरेज़ी साहित्य में पैराडाइज लॉस्ट। यह महाकाव्य के स्तर पर अपने युग की उत्कृष्ट और महान कृति है।" 'मेघदूत' के बारे में कहा है कि "मेघदूत संसार के साहित्य में सर्वाधिक आश्चर्यजनक रूप से श्रेष्ठ वर्णनात्मक और करुण काव्य है। भाषा और ध्वनि का हर सम्भव सौन्दर्य, साहित्यिक साहचर्य का प्रत्येक लालित्य, काल्पनिक और ऐन्द्रिय सौन्दर्य का प्रत्येक स्रोत एक साथ एक ऐसे सामंजस्य में बुन दिया गया है जो कि अप्रतिम और त्रुटिहीन है।" 'रघुवंश' को वे श्रेष्ठ साहित्यिक महाकाव्य मानते हैं जिसमें हमारी जाति की उच्चतम धार्मिक और नैतिक संस्कृति तथा आदर्शों के प्रतिनिधि-रूप प्राचीन राजाओं के एक वंश की कथा का वर्णन है। कालिदास के तीनों नाटक, श्रीअरविन्द के विचार से, प्रेम भाव की धुरी के चारों ओर चक्कर काटते हैं।

श्रीअरविन्द ने कालिदास के काव्यों और नाटकों की ही समीक्षा नहीं की है बल्कि उनके नाटकों के संवादों के गद्य पर भी विचार किया है। उनकी दृष्टि में वह संस्कृत साहित्य का अत्यन्त प्रशंसनीय और अकृत्रिम गद्य है। उनके शब्दों में "यह गद्य पूर्ण रूप से सरल, स्वर-तान में सहज और स्वाभाविक है। इसमें दैदीप्यमान, प्रसन्न और तरल सुबोधता है। इसकी मृदु

आनन्दप्रद गति उस छोटी बालिका की तरह है जो हरी घास के साथ-साथ दौड़ती जा रही हो और आपकी ओर देखकर मुस्कारती भी जाती हो।" श्रीअरविन्द में इस सरल और मधुर गद्य के प्रभाव की तुलना शेक्सपीयर के नाटकों के पद्यात्मक संवादों की भाषा से की है। इस भाषा में संस्कृत भाषा का लयात्मक नाद-सौन्दर्य, मधुर गाम्भीर्य और तरल प्रभाव है।

कहा जा चुका है कि श्रीअरविन्द ने विश्व कवियों के बीच कालिदास के स्थान पर भी विचार किया है। एक स्थान पर वह लिखते है कि "कालिदास मिल्टन और वरजिल के साथ सर्वश्रेष्ठ काव्य-कलाकारों की पंक्ति में स्थान ग्रहण करते हैं। उनकी कला में भावना और संवेदना उक्त अंगरेज़ कवि की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म और सुकुमार है तथा सहज-स्वाभाविक शक्ति का उच्छ्वास भी उक्त रोमन कवि की अपेक्षा अधिक महान है और यह उसके रूप-विधान को जीवन्त और अनुप्राणित करता है।" कालिदास और सेक्सपीयर के काव्य की समान विशेषताओं की चर्चा उन्होंने कई स्थानों पर की है। 'ऋतुसंहार' की समीक्षा में वर्डसवर्थ और कीट्स की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कालिदास के दृष्टिकोण की भिन्नता का जिक्र किया गया है। पुरुरवा और उर्वशी के चरित्रों की समीक्षा विश्व कवियों की पुरुष और नारी सृष्टियों के परिप्रेक्ष्य में की गयी है।

निष्कर्ष यह है कि श्रीअरविन्द ने कालिदास के युग, व्यक्तित्व, काव्य और शैली का जैसा गम्भीर विवेचन किया है, वैसा बहुत कम आलोचक कर सके हैं। श्रीअरविन्द की आलोचना-दृष्टि कितनी व्यापक और गम्भीर थी, इसका उदाहरण कालिदास विषयक निबन्धों में देखा जा सकता है। संस्कृत से अंगरेज़ी में अनुवाद का आदर्श देखना हो तो श्रीअरविन्द के अनुवाद इसके अनुकरणीय उदाहरण हैं। कवि नाटककार के रूप में भी कालिदास और श्रीअरविन्द का तुलनात्मक अध्ययन अध्येताओं के लिए बहुत रोचक विषय हो सकता है। कालिदास यदि भौतिक सांस्कृतिक चेतना के प्रतिनिधि कवि हैं, तो श्रीअरविन्द आध्यात्मिक चेतना के ऋषि दृष्टा हैं।

शरीर और उच्चतर चेतना

जब शरीर उच्च चेतना की ओर खुलता है तब वह चमत्कार प्रस्तुत कर सकत है। एक बार की बात है तब मैं चौदह वर्ष की थी। मेरे दिमाग में एक विचार आया कि क्या मैं बड़े हॉल को तीन कदमो में न ाप सकती हूँ और जब मैंने ऐसा सं कल्प लिया तो सचमुच मैंने तीन कदमो में बड ़े हॉल को नाप लिया। हर बात अपने में मूल्य रखती है लेकिन उसका मूल्य तभी है जब वह तुम्हें अपने अन्दर कु छ नया खोज पाने में मदद करें, तुम्हारी सत्ता के सत्य को जानने में सहायक हो और तब तुम इस तथ्य को जानने लग जाते हो कि ससांर में इतने विरोध,विषमताएँ क्यों है। ये इसल्यों पि हैं कि यहाँ जैसे वस्तु, पदार्थ, व्यक्ति अपनी सही जगह पर नही है। मैं केवल भौतिक स्तर की बात नही कह रह ी हूँ, सत्ता की गहराई में यह तथ्य स्पष्ट होता है जैसे यहाँ सब कुछ गलत जगह (Mis Place) पर हो।

-श्रीमाँ

कर्मधारा-1988

मनुष्य : दास या मुक्त?

-श्रीअरविन्द

यह एक कट्टर मत है कि योग की अनुभूतियाँ उससे नहीं कहनी चाहियें जो शिष्य न हो चुका हो। लेकिन अब एक नया युग आ गया है और पुराने नियमों में संशोधन हो जाना चाहिये। पश्चिमी जगत् भी योग के रहस्यों का अनुसंधान करने लगा है। इसके कुछ नियम, धुँधले और अपूर्ण तौर पर ही सही, यूरोपीय वैज्ञानिकों को ज्ञात हो चुके हैं और कुछ अध्यात्मवाद के द्वारा, ईसाई धर्म-विज्ञान के द्वारा, दूर श्रवण तथा अन्य आधुनिक गुह्य अभ्यासों के द्वारा अनजाने ही नित्य ज्ञात हो रहे हैं मानो अँधेरे में टटोलते हुए आदमी उन सत्यों से टकरा रहे हों जिन्हें वे समझते नहीं। समय आ गया है जब भारत को अपना प्रकाश अपने तक ही सीमित नहीं रखना चाहिये बल्कि संसार में उसे उड़ेल देना चाहिये। योग मानव मात्र को दिया जाना चाहिये, क्योंकि इसके बिना विकास में दूसरा पग नहीं उठ सकता।

योगाभ्यास का प्रायः ऐसे ही लोगों द्वारा किया जाना जो शरीर अथवा मन से संसार के सम्पर्क से अलग रहते आये हैं, इस भ्रांत धारणा के मूल में है कि यह विज्ञान रहस्यमय है, अति दूर और अवास्तविक है। यौगिक क्रियाओं को जो इतना गोपन रखा गया है - जो गोपनीयता मानव-विकास के प्रारम्भिक काल आवश्यक भी थी - उससे यह भ्रांति और भी जड़ पकड़ गयी है। वे अभ्यास, जिन्हें ऐसे लोगों ने किया जो गुप्त समाज में रहते अथवा उन्हीं लोगों को बतलाते थे जिनमें वे आवश्यक प्रारम्भिक तैयारी देख लेते, सचमुच ऐसे अभ्यास थे जिन पर बाह्य जगत अगोचरवाद की मुहर लगी देखता था। वस्तुतः योग के सम्बन्ध में कुछ भी रहस्यमय, छिपा हुआ अथवा अगोचर नहीं है। योग मानव-मनोविज्ञान के कुछ नियमों पर आधारित है, मन का शरीर के ऊपर तथा अन्तरात्मा का मन पर जो नियंत्रण है, उसके ज्ञान पर आधारित है, जो ज्ञान आज तक सर्वसाधारण पर प्रकट नहीं हो सका है और जो इसे जानते हैं वह यह समझते हुए कि यह ज्ञान प्रभाव की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है और जब तक व्यक्ति को इसके सही उपयोग की शिक्षा न दी जाये तब तक उसे नहीं देना चाहिये, इसे गोपनीय रखते रहे हैं। जिस तरह वे लोग जिन्होंने सम्मोहन अथवा वशीकरण की अन्तिम सम्भावनाओं को ढूँढा और परखा है, उसका रहस्य लोगों के सामने खोल देने में झिझकेंगे क्योंकि ऐसा करने से उस सम्मोहिनी शक्ति का मूर्खता अथवा दुष्टतापूर्ण दुर्व्यवहार होगा, लोग स्वार्थ-सिद्धि के लिए अथवा अपराध के लिए उसका उपयोग करने लगेंगे, उसी प्रकार योगियों ने भी मानव के भीतर की इन महत्तर शक्तियों के ज्ञान को स्वयं अपने में बचा रखा है और इसका प्रकाश वे तभी करते रहे हैं जब उन्होंने यह देख लिया कि जिसे वे देना चाहते हैं वह पहले से ही नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त कर चुका है अथवा इन अभ्यासों के लिए उसमें नैतिक और शारीरिक क्षमता है। सीखने वाले के लिए यह नियम निर्धारित कर दिया गया कि वह अपनी अनुभूतियों को किसी से न कहे और विकसित योगी के लिए यह नियम बना कि वह यथासाध्य गुप्त रहे। इससे योग का जो शारीरिक पक्ष है अथवा उसका जो बौद्धिक अथवा नैतिक पक्ष है, उसके सम्बन्ध में व्याख्या अथवा पुस्तक-रचना बन्द नहीं हो गयी। इससे उन महान आत्माओं के काम में बाधा नहीं पहुँची जिन्होंने साधारण शास्त्रोक्त नियमों से योग न प्राप्त कर अपनी आन्तरात्मिक शक्ति से तथा भगवान की विशेष कृपा से योग प्राप्त किया तथा मानव के प्रति अपनी महती करुणा के वशीभूत हो अपने को तथा अपने आध्यात्मिक ज्ञान को उसके सामने प्रकट किया अथवा अपनी शक्ति का एक अंश जगत को दे दिया। बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, चैतन्य ऐसे ही महापुरुष थे, रामकृष्ण और विवेकानन्द भी ऐसे ही थे। यह एक कट्टर मत है कि योग की अनुभूतियाँ उससे नहीं कहनी चाहियें जो शिष्य न हो चुका हो। लेकिन अब एक नया युग आ गया है

और पुराने नियमों में संशोधन हो जाना चाहिये। पश्चिमी जगत् भी योग के रहस्यों का अनुसंधान करने लगा है। इसके कुछ नियम, धुँधले और अपूर्ण तौर पर ही सही, यूरोपीय वैज्ञानिकों को ज्ञात हो चुके हैं और कुछ अध्यात्मवाद के द्वारा, ईसाई धर्म-विज्ञान के द्वारा, दूर श्रवण तथा अन्य आधुनिक गुह्य अभ्यासों के द्वारा अनजाने ही नित्य ज्ञात हो रहे हैं मानो अँधेरे में टटोलते हुए आदमी उन सत्यों से टकरा रहे हों जिन्हें वे समझते नहीं। समय आ गया है जब भारत को अपना प्रकाश अपने तक ही सीमित नहीं रखना चाहिये बल्कि संसार में उसे उड़ेल देना चाहिये। योग मानव मात्र को दिया जाना चाहिये, क्योंकि इसके बिना विकास में दूसरा पग नहीं उठ सकता।

मानव जाति का मनोविज्ञान आज तक विज्ञान के द्वारा नहीं ढूँढा जा सका है। सारी सृष्टि एक ही है और एक ही नहीं तो एक ही प्रकार के नियमों से अनुशासित है। इस प्रकार यदि हम यह जान गये कि भौतिक जगत में सभी पदार्थ उस एक ही भौतिक तल में समाहित हो जाते हैं जिससे पैदा होते हैं, जिसमें गति करते तथा अन्त में विलीन हो जाते हैं, तो यही सत्य अध्यात्म सत्ता के बारे में भी लागू हो सकता है। भौतिक जगत का एकत्व यूरोपियन वैज्ञानिक बुद्धि के द्वारा मान लिया गया है और जर्मनी के वस्तुवादी और अनीश्वरवादी महारथियों ने 'एकमेवाद्वितीय' की घोषणा भौतिक तत्व के सम्बन्ध में निर्भ्रान्त रूप से कर डाली है। इसमें उन्होंने हजारों वर्ष पहले भारतीय योगियों के सिद्धान्त का ही प्रतिपादन किया है। परन्तु आध्यात्मिक तत्वों के अनुसंधानार्थ उन्होंने इस तरह के निश्चित तरीके अब तक नहीं ढूँढे जिस तरह के तरीके वे भौतिक तत्व के सम्बन्ध में ढूँढ चुके हैं। वे मन की ऊपरी क्रियाओं का ही प्रेक्षण करते हैं। लेकिन ऐसी क्रियाओं में मन बाहरी वस्तुओं से इतना अधिक घिरा हुआ होता है और उन पर इतना आश्रित होता है कि परीक्षक के लिए मन की अपनी क्रिया के उत्स का पता पा लेना मुश्किल है। यूरोपीय वैज्ञानिक इस प्रकार इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके हैं कि मानसिक क्रियाओं के कारण हैं बाहरी वस्तुओं की उत्प्रेरणाएँ और जब मन स्वयं अपने-आप में क्रियाशील दिखता है तो भी वह अपनी बाहरी वस्तुओं की पूर्वाजित अनुभूतियों को ही मिलाता, छाँटता, एकत्र करता अथवा बनाता-बिगाड़ता रहता है। मन की प्रकृति ही है पूर्व में अर्जित भौतिक अनुभूतियों की सृष्टि जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी इस प्रकार निश्चित ढंग से उतरती चली आयी है कि मानव-मन विकास करता हुआ आदि मानव के अनगढ़ मस्तिष्क से बीसवीं शती के सभ्य मानव तक बढ़ता चला आया है। इन वस्तुवादी सिद्धान्तों का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि विज्ञान के लिए सचमुच किसी ऐसे मनोमय केन्द्र का अनुमान करना कठिन हो गया जो मानसिक क्रियाओं का उत्स हो और इसीलिए उन्होंने विचार के भौतिक उपकरण मस्तिष्क को ही एकमात्र सच्चा केन्द्र समझ लिया है। इस भौतिकवादी दर्शन से कुछ ऐसे सिद्धान्त निकले हैं जो मानव के नैतिक भविष्य के लिए अत्यन्त ही भयावह हैं। पहला यह कि मानव जड़तत्व की सृष्टि है और उसका दास है। वह जड़तत्व पर अधिकार केवल इसकी आज्ञा का पालन करके ही कर सकता है। दूसरा यह कि मन स्वयं जाम का एक रूप है और इन्द्रियों से स्वतंत्र तथा उनका स्वामी नहीं है। तीसरा यह कि स्वतन्त्र संकल्प नाम की कोई चीज नहीं, क्योंकि हमारी सारी क्रियाएँ दो महान शक्तियों से नियन्त्रित हैं - आनुवंशिकता और परिपार्श्व। हम लोग अपनी प्रकृति के दास हैं और जहाँ हम इसको दासता से मुक्त दिखलायी पड़ते हैं वहाँ हम इससे भी अधिक परिपार्श्व के दास होते हैं जिस पर उन शक्तियों का प्रभाव होता है जो हमारे इर्द-गिर्द है और हमें चलाया करती हैं।

योग हमें वस्तुवादी दर्शन के इन्हीं झूठे और भयंकर सिद्धान्तों से, जो भविष्य को खतरे में डाल रहे हैं और मानव-प्रगति के अवरोधी हैं, बच निकलने का उपाय देता है। वह जड़तत्व से मनुष्य को स्वतन्त्रता का जोर से प्रतिपादन करता ओर वह उपाय बतलाता है जिससे मानव इस स्वतन्त्रता को अपने जीवन में बरते। योगियों का सबसे पहला बड़ा अनुसंधान यह था कि उन्होंने मन और हृदय की अनुभूतियों का विश्लेषण किया। योग के द्वारा मन को पृथक किया जा सकता है, इसकी क्रियाओं को उसी प्रकार देखा जा सकता है जिस प्रकार अनुवीक्षण-यन्त्र के द्वारा सूक्ष्म चीजों को। अन्तःकरण के, प्रत्येक मानसिक और नैतिक शक्ति के विभिन्न भागों के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म कार्य को अलग-अलग किया जा सकता है, उनकी अलग-अलग क्रियाओं को तथा साथ ही दूसरी क्रियाओं के साथ उनके सम्बन्धों और गुणों से परखा जा सकता है और इस प्रकार अध्ययन करते हुए पीछे हटते-हटते वहाँ तक पहुँचा जा सकता है जहाँ मानसिक क्रियाओं के उद्गम-रूप, उस मूल आध्यात्मिक तत्व पर उसी प्रकार पहुँचा जा सकता है जिस प्रकार वस्तुवादी विश्लेषण के द्वारा एक मूलगत भौतिक तत्व पर

पहुँचा गया है। मनोमय चेतना के उस मूल केन्द्र को भी इसने विलग किया और आंका है जहाँ सभी मानसिक क्रियाएँ एकत्र होती हैं और इसी तरह व्यक्तित्व के मूल का पता लगाया है। इस विश्लेषण का पहला अनुसंधान यह है कि बाहरी तत्वों से मन अपने-आपको बिलकुल पृथक कर सकता है और स्वयं अपने-आप में अपनी शक्तियों के द्वारा क्रियाशील रह सकता है। यह सच है कि यह स्वयं हमें बहुत दूर नहीं ले जाता, क्योंकि हो सकता है कि यह अपने उन तत्वों का उपयोग कर रहा है जो इसने अतीत की अनुभूतियों से अर्जित कर रखा है। लेकिन दूसरा अनुसंधान यह है कि ज्यों-ज्यों मन अपने को विषयों से अधिक मुक्त तथा अलग रखता जाता है त्यों-त्यों यह अधिक शीघ्रता से, शक्ति से तथा निश्चयता से काम करता है। तब इसमें एक तीव्रगामी स्पष्टता, एक विजयिनी और प्रभुत्व सम्पन्न अनासक्ति रहती है। यह एक अनुभूति है जो उस वैज्ञानिक सिद्धान्त को खण्डित-सी करती है कि मन सभी इन्द्रियों को अपने-आप में खींच सकता है और उन सबके साथ फिर उन चीजों पर क्रिया कर सकता है जिनका इसे उस समय पता भी नहीं रहता जब यह दूसरी चीजों में लगा रहता है। विज्ञान स्वभावतः इन चीजों को दृष्टि-भ्रम कहेगा और चुनौती देगा। जवाब यह है कि ये ऐसे व्यापार हैं जो एक-दूसरे से निश्चित रूप से, सीधे-सादे, बोधगम्य तरीके से सम्बद्ध हैं; स्वयं इनकी अपनी दुनिया है और जड़ जगत पर विचारों की जो क्रिया चलती है उससे ये स्वतंत्र हैं। यहाँ भी विज्ञान सम्भवतः यह उत्तर देगा कि यह जगत भौतिक जगत के मस्तिष्क में केवल काल्पनिक अभिज्ञा है और हम इसके सम्बन्ध में इसकी घटनाओं से निश्चित और अप्रत्याशित होने के बारे में जो भी तर्क देंगे, हमारी अपनी कल्पना और संकल्प से इसकी स्वतंत्रता के बारे में जो भी तर्क उपस्थित करेंगे, विज्ञान उसके विरोध में अपने अचेतन मस्तिष्क की क्रिया और अचेतन कल्पना का सिद्धान्त ला खड़ा करेगा। चौथी खोज यह है कि मन केवल बाह्य तत्व से अलग ही नहीं है, वह इसका स्वामी भी है। बाहर उत्प्रेरकों का न केवल निराकरण कर सकता है, वरन् यह उनका नियंत्रण भी कर सकता है। इतना ही नहीं, यह गुरुत्वाकर्षण जैसे स्पष्ट भौतिक नियमों को झुठला सकता है, उन्हें अलग हटा सकता है और प्रभावहीन बना सकता है, क्योंकि आखिर ये भौतिक प्रकृति के नियम हैं और मन के अन्तर्गत है उनसे अवर कोटि के है, क्योंकि मन की उपज जड़तत्व है न कि जड़तत्व की उपज मन।

योग का यह निश्चयात्मक अनुसंधान, वस्तुवादी दर्शन का अन्तिम खण्डन है। फिर इसके बाद आती है सर्वोपरि सिद्धि जो हमारे अन्दर अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द का उत्स है जो निर्बलता, अज्ञान और कष्ट की सम्भावनओं के बहुत ऊपर है; हम इसका स्पर्श प्राप्त कर सकते हैं और स्वभावता: इनका उपयोग और आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। यही भगवान है जिस के साथ एकत्व प्राप्त करना योग का चरम उद्देश्य है - यही वह मिलन है जो ज्ञान, धर्म और आनन्द के लिए होता है। ○○○○

पत्र, एक अमरीकी सम्पादक के नाम

-उदार पिण्टो

अमेरिका में कैथोलिक ईसाई विचारों की प्रतिनिधि और प्रभावशाली एक पत्रिका का नाम 'क्रास करेन्ट्स' है। महत्वपूर्ण बात है कि इसने अपना एक सम्पूर्ण अंक श्रीअरविन्द को समर्पित किया है। इसकी छपाई वगैरह काफी सुन्दर हुई है और इस में श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के विचारों के अतिरिक्त सम्बन्धित लेखों को भी समाहित किया गया है।

भूमिका से पता चलता है कि प्रधान सम्पादक श्री विलियम बरमिंघम काफी सहानुभूतिपूर्ण और समझदार हैं। पर उन्होंने दो ऐसे मुद्दे उपस्थित किये हैं, जिससे उनके मतानुसार पश्चिम - ईसाई पश्चिम, हमारे पक्ष को स्वीकारने में हिचकिचायेगा। इन मुद्दों पर मेरा उनके नाम पत्र निम्नलिखित है। ये सामयिक तर्क हैं और हमारे पाठक इनमें दिलचस्पी ले सकेंगे।

प्रिय श्री बरमिंघम,

अमेरिका के मेरे कतिपय मित्रों ने मेरे पास आप की शानदार पत्रिका 'क्रास करेन्ट्स' खण्ड 22, अंक 1 की एक प्रति भेजी है, जो पूर्णतः श्रीअरविन्द, को समर्पित है। इसमें श्रीअरविन्द, श्रीमाँ और उनके शिष्यों के भी लेखन का अच्छा चयन प्रकाशित हुआ है। आपने श्रीअरविन्द कर्मधारा (Sri Aurobindo's Action) पर मेरा एक टिप्पणी-पत्र भी प्रकाशित किया है। प्रस्तुतीकरण अत्यन्त प्रभावकर है और इस अंक के लिए आप बधाई के पात्र हैं।

मैं निजी तौर आपको कतिपय मुद्दों सम्बन्ध में लिख रहा हूँ, जिसे आपने भूमिका में उपस्थित किया है। मैं इस सवाल में निजी तौर पर इसलिए उलझ रहा हूँ कि मेरे पुरखे सौ वर्षों से कैथोलिकवाद से सम्बद्ध रहे हैं और मैं भी एक बार पवित्र दीक्षायें लेने की सोच रहा था। मेरी शिक्षा भी पश्चिमी रही है क्योंकि मैंने भारत स्थित यूरोपीय विद्यालयों में ही अधिकांश पढ़ायी की है। मैं चार साल से अधिक समय तक इंगलैण्ड में भी रहा और मैंने लन्दन विश्वविद्यालय से इन्जीनियरी की उपाधि प्राप्त की और वैमानिकी इन्जीनियरी में डिप्लोमा भी ग्रहण किया। इसके पहले बम्बई में मैंने भौतिक शास्त्र में उपाधि ग्रहण की। अन्त में मैं श्रीअरविन्द आश्रम का वासी साधक रहकर लगभग 35 वर्ष से पूर्ण योग की साधना कर रहा हूँ। मैं श्रीअरविन्द कर्मधारा (Sri Aurobindo's Action) का मन्त्री हूँ।

मैंने केवल यह सिद्ध करने के लिए यह विवरण दिया है कि मैं आपकी 'भूमिका' से उद्भूत सवालों से उलझने की थोड़ी-सी क्षमता रखता हूँ। यह पत्र आलोचना के उन दो मुद्दों के सम्बन्ध में है जो 'ईसाई पश्चिम' में लिखित विचारों से सामने आये हैं। मैं इन संगत आलोचनाओं की सराहना करता हूँ और इसीलिए मैं इस पत्र में पूरी तौर से उनकी छानबीन, निजी तौर से आपके लिए और सम्पादक के नाते भी करूँगा, क्योंकि आप खुद इन दो मुद्दों पर हमारे पक्ष के प्रति वही हिचकिचाहट रखते हैं। मैं इन आलोचनाओं का उत्तर देने का प्रयास तर्क-पद्धति से नहीं कर रहा हूँ क्योंकि उनका हल इस तरह से नहीं निकलेगा, बल्कि मैं इनका उत्तर व्यवहारिक रूप से दूँगा।

पहली बात तो कालतत्व के सम्बन्ध में है, जहाँ आपने कहा है कि जिन रूपान्तरणों और विकासगत परिवर्तनों को हम सन्निकट मानते हैं, वे पश्चिम की दृष्टि में हजारों वर्ष में चरितार्थ होंगे। यह सर्वथा सत्य है। यह हमारा पक्ष है और इसे स्वीकारने में हम एक तार्किक मस्तिष्क की द्विविधा बखूबी समझ सकते हैं, फिर भी हमारा पक्ष सकारण है, जिसे केवल

अनुभव से समझा जा सकता है। हममें से वे जो श्रीअरविन्द कर्मधारा के आन्दोलन में संलग्न है, एक ऐसी महाशक्ति के सम्बन्ध में अत्यन्त चेतन हैं, जो इस देश में ही नहीं, सम्भवतः दुनिया भर में कार्यरत है। यह सर्वथा नयी शक्ति है जो पुराकाल में कभी नहीं थी और ऐसी शक्ति का

अनुभव पहले कभी नहीं किया गया था और यह अत्यन्त भौतिक तरीके से हमारी दिनचर्या को प्रभावित करती है। इसका एक ज्वलंत उदाहरण हमारी पत्रिका 'Sri Aurobindo's Action' में प्रकाशित 'गड्डी पल्ली चमत्कार' (The Gaddipalli Miracle) शीर्षक लेख में देखने को मिलेगा। मैं इसकी एक प्रति आपके पास भेज रहा हूँ।

> कोई बात नहीं यदि सैकड़ों प्राणी घोरतम अज्ञान में डूबे हुए हैं। जिनका मैंने कल दर्शन किया है, वे इसी पृथिवी पर हैं। उनकी विद्यमानता इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि वह दिन अवश्य आयेगा जब अन्धकार प्रकाश में बदल जायेगा, जब भगवान का राज्य पृथिवी पर सचमुच स्थापित हो जायेगा ।
>
> -श्रीमाँ

श्रीमाँ ने इस शक्ति के अस्तित्व और संचालन की पुष्टि की है। श्रीमाँ का कहना है कि अतिमानस की ओर अग्रसर चीरती हुई पथ रेखा को जिस शक्ति ने बनाया है वह महाशक्ति श्रीअरविन्द की तपस्या से अवतरित हुई है। एक वैज्ञानिक और इन्जीनियर के नाते मैं इसे अच्छी तरह समझ सकता हूँ। भूतकाल में वे भौतिक शक्तियाँ भी तो उपलब्ध नहीं थीं, जिन्हें वैज्ञानिकों के अध्ययन और अनुसंधान ने आज अवतरित कर दिया है और यह उनकी तपस्या का ही रूप है। मैं आण्विक शक्ति का प्रसंग देना चाहूँगा। तब क्यों हम दूसरे प्रकार के वैज्ञानिक अर्थात् योगी के अनुसंधान से दूसरे तरह की शक्ति नहीं हस्तगत कर सकते? इस शक्ति को न समझने के कारण हम इसे गुह्य कहते हैं। गुह्य मात्र एक सापेक्ष शब्द है। फिर भी इसका व्यवहारिक प्रयोग हो चुका है और हम इसकी सच्चाई को प्रमाणित कर सकते हैं। यदि अन्य लोग इस शक्ति का अनुभव और प्रयोग करना चाहते हैं तो उन्हें उन शर्तों को स्वीकार करना होगा, जो शर्तें अन्य शक्तियों के साथ भी आवश्यक हैं।

यही वह शक्ति है, जिसका मूल्यांकन न करने से कहा गया है कि परिणाम हजारों सालों में परिलक्षित होंगे। इस शक्ति के महाबल से कालतत्व में उल्लेखनीय कमी आ सकती है।

'धरती पर अतिमानस का अवतरण' नामक कृति से हम श्रीअरविन्द के शब्दों का ही उल्लेख नीचे कर रहे हैं:

"सचमुच यह हमारे विकास का ही परिणाम है कि हम इस रूपान्तरण की सम्भावना तक पहुँचते हैं। जैसे प्रकृति ने जड़ से आगे विकसित होकर जीवन का उद्भव किया, जीवन से आगे बढ़कर मन का सृजन किया; उसी तरह से वह मानस से भी आगे बढ़कर हमारे मानसी अस्तित्व की अपूर्णता और सीमाओं से मुक्त हमारे अस्तित्व की ऐसी चेतना और शक्ति को निश्चय ही अवतरित करेगी जो अतिमानसी शक्ति तथा पूर्णता को विकसित करने में सक्षम होगी। तब हमारा विकास मन्द और रुद्ध गति से नहीं होगा।"

दूसरा तर्क श्रीमाँ के सम्बन्ध में हमारी धारणा से सम्बन्धित है, जिस सम्बन्ध में आप अधिकारपूर्वक कहते हैं कि उस धारणा को पश्चिम शायद ही स्वीकार करे। खास तौर से हम कैथोलिक पश्चिम की बात करें। ईसा की माँ मेरी के प्रति

कैथोलिक श्रद्धा क्या है, तब हम नहीं समझ पाते कि श्रीमाँ के प्रति हमारी श्रद्धा ग्राह्य क्यों नहीं होगी। हाँ, दोनो धारणामों में अन्तर जरूर है। यपि कैथोलिक मेरी को देवी या भगवान मानकर नहीं पूजते पर वह भगवान की जननी होने के नाते उसके अत्यन्त सन्निकट आ जाती है। औसत कैथोलिक इस अन्तर को ग्रहण नहीं करता। जहाँ तक श्रीमाँ का सवाल है हम निश्चय ही उन्हें और श्रीअरविन्द को समान रूप से भगवान मानते हैं।

युगल दैविकता के सम्बन्ध में क्या सचमुच कोई आपत्ति हो सकती है? हाँ, कैथोलिक लोग ईसा के अलावा और किसी को निश्चय ही भगवान नहीं मानेंगे। आपत्ति का यही वास्तविक मुद्दा है।

अब हम उस स्थिति की कल्पना करें जब ईसा पैदा हुए थे। उस समय मूसा और अब्राहम के ईश्वर पूर्णतः स्थापित हो चुके थे और यरुशलम में उनकी पूजा होती थी। ऐसे में बढ़ई का एक लड़का आया जिसने अपने को भगवान, भगवान का बेटा कहा। रूढ़ि-व्यवस्था उसे कैसे स्वीकार कर सकती थी? इसलिए उन्होंने न केवल ऐसे असंगत दावे को अस्वीकार ही किया, बल्कि उसे अभियोग लगाकर क्रास पर भी चढ़ा दिया। आज विश्व-जनमत का बहुलांश उनकी निन्दा करता है। समूची ईसाई दुनिया उन्हें भगवान के बेटे का हत्यारा कहती है।

पहले जिस अल्पसंख्या पर अभियोग लगाया गया था, जिसे दण्डित किया गया था, आज वही शक्तिशाली रूढ़ि-व्यवस्था में बदल गयी है, तो क्या वह भी मानवरूप भगवान को, जब वे प्रकट होंगे, अस्वीकार करेगी? अगर ऐसा होगा तो भविष्य की पीढ़ियाँ उसको भी वैसे ही धिक्कारेंगी। तब यही ठीक होगा न, कि वे अनुभव से लाभ उठायें और कम-से-कम अस्वीकार करने के पूर्व गहराई से छानबीन करें। आपने अपनी पत्रिका के इस अंक में ऐसा ही किया है, इसीलिए मैंने इसकी इतनी तारीफ की है। पर खोज कैसे हो? भगवान को कैसे जाना जाये? क्या तर्क से? हम सब इस सवाल का मंथन करें। भगवान केवल इसी एक रास्ते से देखा, अनुभवित किया और समझा जा सकता है। जो उन्हें पाना चाहते हैं, वे अपनी आत्मा की आँखों और अनुभव के द्वारा उसे पा लें।

कुछ लोग होंगे जिनकी रुचि इसमें नहीं होगी और वे उस रूढ़ि-व्यवस्था में हमेशा जड़वत् रहेंगे जो सदाजीवित रहकर उस प्रकाश को बुझाने का प्रयास करती है, जो तमस को चीरकर निकलता है। हम सब को चुनना है - "सत्य अथवा रसातल।"

> इस बात की गाँठ बाँध लो कि श्रीमाँ के ऊपर पूर्ण विश्वास के साथ आगे बढ़ों तो चाहे जैसी परिस्थिति और कठिनाई हो, चाहे जितना समय लगे, तुम निश्चित रूप से लक्ष्य तक पहँच पाओगे, कोई बाधा, विलम्ब या विपरीत स्थिति अन्तिम सफलता को बिगाड़ न पायेगी।
>
> - श्रीअरविन्द

भारतीय राष्ट्रवाद का प्रखर पुरोधा

-जवाहर लाल नेहरू

यह असाधारण बात है कि वह व्यक्ति जो अपने जीवन के अत्यंत निर्माणात्मक वर्षों में -७ से २१ तक - भारत से असंपृक्त था और पाश्चात्य क्लासिक्स और अपने समय के अंगरेजी पर्यावरण में डूबा हुआ था, बाद के वर्षों में भारतीय दर्शन और अध्यात्म पर आधारित भारतीय राष्ट्रवाद का प्रखर पुरोधा बन गया। सक्रिय राजनीति में उनका सम्पूर्ण जीवन, १९०५ से १९१० तक, अत्यन्त लघु था, क्योंकि शीघ्र ही वे पांडिचेरी चले गये और अपने आपको आध्यात्मिकऔर यौगिक क्रियाओं में लगा दिया। इस अल्प अवधि में वे जैसे टूटे हुए तारे की तरह धम से गिरे और भारतीय युवकों को चकाचौंध-सा कर दिया।

बंग-भंग विरोधी महान आन्दोलन का अधिकांश दर्शन उन्हीं का दिया हुआ है और निस्सन्देह उन्होंने ही महात्मा गांधी द्वारा संचालित महान आन्दोलन के लिए भी पथ तैयार किया।

यह महत्वपूर्ण है कि भारत के महान राजनीतिक जन-आन्दोलनों के पीछे आध्यात्मिक भूमिका रही है। श्रीअरविन्द के मामले में यह स्पष्ट ही है। उनकी भावनावादी अपील गहरी राष्ट्रीयता और भारत 'माँ' की मान्यता पर आधारित थी। भारतीय जनता से महात्मा गांधी की अपील, जिसका चमत्कारिक प्रभाव पड़ा, मूलतः आध्यात्मिक थी। यद्यपि यह भारत को दार्शनिक परम्परा पर आधारित थी फिर भी यह सारे विश्व के लिए सार्थक थी।

श्रीअरविन्द ३८ वर्ष की अल्पायु में हो राजनीति से अलग हो गये। हमारी पीढ़ी के बहुत से लोग, जिसमें से अधिकांश हमारे संघर्ष के राजनीतिक पहल में निमग्न थे, नहीं समझ सके कि उन्होंने ऐसा क्यों किया। बाद में जब महात्मा गाँधी ने असहयोग आन्दोलनों को शुरू किया, हम आश्वस्त हुए कि श्रीअरविन्द एकान्त से बाहर आयेंगे और महान संघर्ष में सम्मिलित होंगे। उनके ऐसा न करने पर हम हताश हुए, यद्यपि मुझे सन्देह नहीं कि उनकी सारी शुभकामनायें इसके प्रति थीं।

जीवन एक गति है

जीवन एक गति है, वह एक प्रयास है, आगे की ओर बढ़ना है, पर्वत पर आरोहण है, ऊँची जानकारियोंतथा भावी सिद्धियो के प्रति अभियान है। विश्राम करने की इच्छा करने से अधिक खतरनाक और कोई चीज नही है। संच्चा विश्राम भागवत कृपा पर पूर्ण विश्वास, कामनाओ कं अभाव और अहंकार के ऊपर विजय है।

-श्रीअरविन्द

आश्रम गतिविधियाँ

27 अगस्त 2021

श्रीअरविंद की 150वीं जयंती पर इन्दिरा गाँधी कला केंद्र द्वारा आयोजित 'राष्ट्र की अवधारणा और श्री अरविंद' में आश्रम ने बड़ी संख्या में उपस्थिती दर्ज की। इस अवसर पर डॉ. रमेश बीजलनी ने भी अपन वक्तव्य दिया और सुश्री तारा दीदी को सम्मानित किया गया। सांस्कृतिक विभाग के राज्य स्तरीय मंत्री श्री अर्जुन सिंह मेघवाल उपस्थित थे।

The Idea of Nation and Sri Aurobindo
राष्ट्र की अवधारणा और श्री अरविंद
Celebrating 150 years of Sri Aurobindo
IGNCA

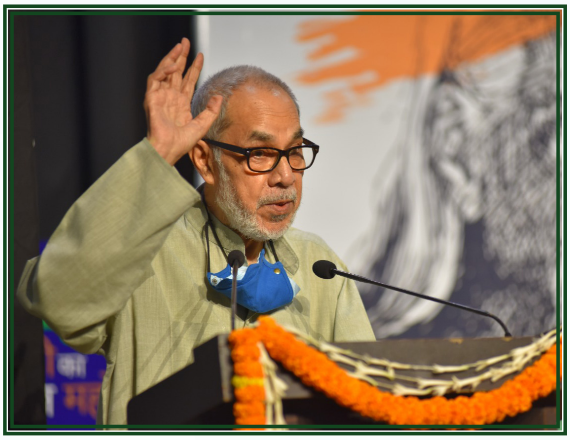

The Idea of Nation and Sri Aurobindo
राष्ट्र की अवधारणा और श्री अरविंद
Celebrating 150 years of Sri Aurobindo
Shri Arjun Ram Meghwal
Shri Ram Bahadur Rai
IGNCA

Ministry of Culture
Government of India
आज़ादी का अमृत महोत्सव
The Idea of Nation and Sri Aurobindo
राष्ट्र की अवधारणा और श्री अरविंद
Celebrating 150 years of Sri Aurobindo
Ram Bahadur Rai
President, IGNCA

2 अक्टूबर 2021 – गाँधी जयंती

गाँधी-जयंति के शुभ अवसर पर आश्रम के सभी शिक्षार्थियों ने साथ मिलकर श्रमदान किया। डॉ.रमेश बिजलानी ने युवा को गाँधी जी के जीवन शैली से परिचय करवाया गया।

गांधी पर एक प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता 'कौन जानता गाँधी को' में गाँधी जी के जीवन से जुड़े प्रश्न पूछे गये और उनके बारे में रोचक और प्रेरणादाई जानकारी दी गई, गाँधी के नैतिक मूल्यों पर आधारित फिल्म 'लगे रहो मुन्ना भाई' प्रदर्शित की गई। इस भव्य दिन का समापन सामूहिक ध्यान और प्रार्थना से हुआ।

Relevance of Mahatma Gandhi Today
CHETNA

5 अक्टूबर 2021 – पुस्तकों का विमोचन

तल्ला रामगढ़, उत्तराखंड में शिक्षा, स्वास्थ्य और आजीविका के सामुदायिक दृष्टिकोण, नए रास्ते-अनुभव और प्रयोग मुख्यधारा के स्कूल में एकीकृत शिक्षा के साथ- 'दा मदर्स इंटरनेशनल स्कूल और इंटीग्रल सेंस एंड फैकल्टी डेवलपमेंट- मिराम्बिका तीन पुस्तकों का विमोचन किया गया।

डॉ. 'सच्चिजानंद जोशी', इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, प्रो. रजनी पलरीवाला, समाजशास्त्र के पूर्व प्रोफेसर, दिल्ली विश्वविद्यालय और वरिष्ठ सहयोगी, सेठ मदनलाल पलरीवाला, डॉ. 'जयंती रवि', सचिव, ऑरोविले फाउंडेशन उपस्थित थे।